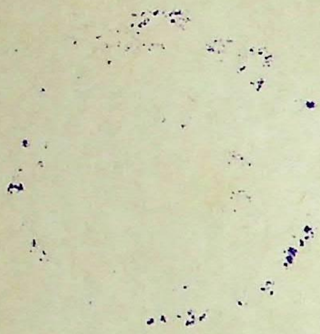


नीलजा

सम्पादक मण्डल :

● पृथ्वीनाथ मधुप
● डॉ० निज़ामउद्दीन
● चमनलाल सपरू

संयोजक :

पृथ्वीनाथ मधुप

प्रकाशक :
साहित्य विभाग
जम्मू-कश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, श्रीनगर।

अनुक्रमणिका

काव्य-धारा

कथा–धारा

निबन्ध–धारा

काव्य-धारा

★ महाकवि परमानन्द
★ ठाकुरजुव मनवटी
★ हलदरजुव क्वकरू
★ ज़िन्दकौल (मास्टरजी)
★ नीलकण्ठ शर्मा
★ दुर्गाप्रसाद काचरू
★ दीनानाथ 'नादिम'
★ पृथ्वीनाथ 'पुष्प'
★ जानकीनाथ कौल 'कमल'
★ गंगादत्त 'विनोद'
★ मोहनलाल सर
★ पृथ्वीनाथ मधुप
★ अय्यूब 'प्रेमी'
★ मोतीलाल 'चातक'
★ रोशनलाल कौल
★ शान्तिवीर कौल
★ कु० आबिदा

सम्पादक :

पृथ्वीनाथ मधुप

कश्मीर की हिन्दी-काव्य-धारा

कश्मीर प्रान्त में हिन्दी कविता कब से लिखी जाने लगी इस संबन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। हाँ, दसवीं शताब्दी के कश्मीर के प्रसिद्ध कवि श्री आनन्दवर्द्धनाचार्य की रचना 'ईश्वरशतक' में एक ऐसा श्लोक पाया जाता है जिसमें कवि के कहने के अनुसार छः भाषाओं का समावेश है——षड् भाषा मिश्रितोऽयं श्लोकः। श्लोक की मुख्य भाषा संस्कृत और उसी में छह भाषाएँ समाविष्ट हैं। टीकाकार भी इन छह भाषाओं का प्रथक्-प्रथक् उल्लेख नहीं कर पाए हैं। सम्भव है, हिन्दी का भी कोई रूपान्तर इसमें समाविष्ट हो। सन १६२५-१७२१ ई० की एक सुप्रसिद्ध कवयित्री रूपभवानी या वोपद्यद उपनाम अलक्षेश्वरी की वाणी में भी कहीं कहीं हिन्दी की छटा मिलती है।

यथा :—

सन्तोष समाध एकासन में लगाया
प्रेम का दृढ़ किया..............
तुमरे चरण हृदय में बसाया
अपनी घर आया.............. । आदि

उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतना तो बिल्कुल स्पष्ट है कि महाकवि परमानन्द के समय तक (सन् १७६१—१८७६ ई०) कश्मीर प्रान्त में हिन्दी काव्य का थोड़ा बहुत विकास हुआ था। यहाँ के कवि कश्मीरी के साथ साथ हिन्दी में भी कविताएँ करने लगे थे। बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध से हिन्दी प्रचारकार्य के साथ-साथ स्वतन्त्ररूप से हिन्दी काव्य-लेखन का श्रीगणेश भी हुआ। अठारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शती पूर्वार्द्ध तक स्वतन्त्ररूप से किसी भी कश्मीर-प्रान्तीय कवि ने ठेठ हिन्दी में रचना नहीं की है। इस अवधि में कश्मीरी पद्य के

साथ ही साथ कई कवियों ने हिन्दी पद्य में रचनाएँ कीं हैं। कई कवियों ने तो कश्मीरी और हिन्दी पद्य की मिली-जुली रचनाएँ भी कीं। उदाहरणार्थ महमूद गामी के "क़सये सुलतान महमूद गज़नवी" लक्ष्मणजुव 'बुलबुल' तथा कृष्णराज़दान की कविताओं की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकतीं हैं:—

१. वुछिन ह्वय ला'लिमिरजान होशि ड'जमुच
बदान तस यारु सुन्जि माथि ग'जमुच
सुनो फर्याद मेरा हे खुदाया!
सजन पर क्या हुआ आज क्यों न आया
किधर चलता कहाँ हम क्या करूँगा
उसी की खातिरी आज मैं मरूँगा
हमारा क्या लिया क्या ले लिया दिल
उसी को चारा माँगो कारि मुश्किल........

—महमूद गामी।

२. गोविन्दनामा श्याम कलेवर निष्कामा
राम सुदामा गूपियन हुन्दि बिश्रामा
योगी भोगी सत विचारी ब्रह्मचारी
क्षमाकारो वुछ तुॅ बुमा कुनि जोगा
छ़रिसुय डोलस आसि गौगा ब्ययि होगा
होगा क्या जब तुम न होगे उपकारी।

—लक्ष्मणजुव 'बुलबुल'।

३. शकरवुठव मकर शिवनाथ शिवनाथ
सुनता हूँ तुझसे अब मैं धर्म की बात......

—कृष्णराज़दान

कई कश्मीरी कवियों ने अपनी कश्मीरी कृतियों में कई पूर्ण हिन्दी कविताओं का समावेश किया है। महाकवि परमानन्द के 'राधास्वयंवर' नामक प्रबन्ध में अनेक हिन्दी कविताएँ हैं। ठाकुर जुव

मनवटी की कृति 'अमृतसागर' तथा नीलकण्ठ शर्मा की अमर रचना 'रामायणिशर्मा' में भी अनेक हिन्दी कविताओं का समावेश है। हलधरजुव क्वकरू तथा मास्टर ज़िन्दाकौल की भी कई हिन्दी कविताएँ प्राप्य हैं। मास्टर जिन्दा कौल की एक लघु-हिन्दी कविता-पुस्तिका 'पत्र-पुष्प' नाम से अलग से भी छपी थी। ऐतिहासिक दृष्टि से इस लघु पुस्तिका का भी काफी महत्व है।

जैसा कहा गया है कि बीसवीं शती पूर्वार्द्ध से कश्मीर प्रान्त में हिन्दी प्रचार को काफी गति मिली, जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्ररूप से हिन्दी लेखन की ओर साहित्यकारों का झुकाव बढ़ता गया और कई हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ। हिन्दी-प्रचार एवं हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के जन्म से ही बहुत से आधुनिक कश्मीरी हिन्दी कवियों को लिखने की प्रेरणा मिली।

कश्मीर के हिन्दी कवियों को निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:—

१. कश्मीर के वे हिन्दी कवि जो कश्मीर में नहीं रहते हैं।
२. कश्मीर के वे हिन्दी कवि जो पूर्णतः कश्मीर निवासी हैं; तथा
३. अकश्मीरी कवि जो कश्मीर में निवास करते हैं।

पहले प्रकार के कवियों एवं कवयित्रियों में श्रीमती सत्यवती मल्लिक, श्री जीवनलाल 'प्रेम', श्री त्रिलोकी नाथ वैष्णवी, श्री ओंकार काचरू, श्रीमती निर्मला 'कुसुम' तथा श्री मोहन लाल सर आदि उल्लेखनीय हैं।

दूसरे प्रकार के कवियों में स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद काचरू, श्री दीनानाथ 'नादिम' श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प', श्री पृथ्वीनाथ मधुप, श्री मोहन 'निराश', श्री शशिशेखर तोषखानी, श्री रत्न लाल 'शान्त' तथा श्री मोती लाल 'चातक' आदि उल्लेखनीय हैं। स्वर्गीय काचरू ने 'अश्रुकण' नाम से अपनी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित करना चाहा था; पर उनकी अकाल

मृत्यु के कारण यह संकलन अधूरा ही मुद्रित हो सका। श्री दीनानाथ 'नादिम' लगभग १९५२ ई० तक हिन्दी कविता लिखते रहे। इनकी सभी हिन्दी कविताएँ काफी लोकप्रिय हुईं थीं पर ये हिन्दी से कश्मीरी की ओर गये। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को ज्ञात हुआ है कि श्री 'नादिम' अब भी यदा-कदा हिन्दी कविता रचते हैं। श्री 'पुष्प' ने भी कई सुन्दर कविताएँ रचीं थीं पर ये अब आलोचनात्मक प्रबन्ध लिखने में ही लगे हैं। सर्वश्री मधुप, निराश, शशिशेखर तथा शान्त सन् १९५० ई० से बराबर हिन्दी कविता करते आ रहे हैं। कश्मीर के हिन्दी कवियों में इनका प्रमुख स्थान है। हिन्दी काव्य जगत में ये धीरे धीरे अपना अपना स्थान बना रहे हैं। इनकी रचनाएँ राज्य एवं राज्य के बाहर की प्रमुख एवं स्तरीय हिन्दी पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। श्री मधुप का 'वे मुखर क्षण' श्री शेखर का 'थोडासा आकाश' तथा श्री शान्त का 'छोटी किरणें' नामक कविता संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। उपरोक्त चारों कवि नई कविता एवं अकविता से काफी प्रभावित हैं। श्री 'चातक' बहुत प्यारी कविताएँ रचते है। इनकी कविताएँ अधिकांशतः राष्ट्र-वादी होती हैं। कहीं कहीं इनकी कविताओं में समाज की रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं के प्रति रोष की अभिव्यक्ति भी हुई है। छात्र-कवियों में से श्री शान्तिवीर कौल 'नवप्रभात' मुख्यरूप से उल्लेखनीय है। 'नवप्रभात' अवश्य ही अपनी हेम-किरणों से हिन्दी कविता को जगमगायेंगे।

श्री सत्यलाल 'रसिक', श्री जानकी नाथ 'जिज्ञासु', श्री जानकी नाथ कौल "कमल" तथा श्री द्वारिका नाथ गिग्गू 'राजकमल' आदि की हिन्दी कविताएँ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

तीसरे प्रकार के हिन्दी कवियों में सर्वश्री गंगादत्त शास्त्री विनोद, डॉ० रमेश कुमार शर्मा तथा ज्योतीश्वर 'पथिक' का नाम उल्लेखनीय है। इन सब का प्रतिनिधित्व डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ 'प्रेमी' कर रहें हैं। 'प्रेमी' जी गीत तथा नई कविता दोनों लिखतें हैं। आप के कविता संकलन 'दर्पण बन गया इतिहास' तथा 'ये आस्था ये अन्धेरा' देहली से

प्रकाशित हुए हैं ।

प्रस्तुत संकलन के 'काव्य-धारा' विभाग में कश्मीर प्रान्त में हिन्दी कविता के क्रमबद्ध विकास की एक झांकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । जिन कवि महोदयों ने अपना सहयोग देकर कृतार्थ किया है उनका हम हृदय से आभार मानतें हैं । जिनका सहयोग बार बार प्रार्थना करने पर भी प्राप्त नहीं हो सका है उनकी रचनाओं का अभाव संकलन में अवश्य खटकता है पर इस से संकलन के महत्व में कोई कमी नहीं आ पाई है ।

—पृथ्वीनाथ मधुप

—महाकवि परमानन्द

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे ?

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे ।
मग्न रहा बैठा परमात्मा ।
बीच अपने कुछ भी नाहि जाना,
अपने आप को देखन आयो रे ॥

चित्त-आभास का बाधा होके ।
कृष्ण आप ही आप राधा होके,
फिर गई माया, ना मोहन आयो रे ॥

परमानन्द विषयानन्द हो के,
मस्त रहे हस-हस के रोके,
आप अलेप आप लेपन आयो रे ॥

'परमानन्द' परम-आनन्द हो के ।
अनाहद नाद योग नाद बिन्दु हो के ।
नित मुक्त हो के नित बन्ध हो के,
जग में कृष्ण उस कारण आयो रे ॥

—ठाकुर जुब मनवटी

उपदेश अष्टक

इक प्रभु परमात्मा बिन सब यह नाता छोड़ दे।
ज्ञान जान हर जान का बनना बनाना छोड़ दे ॥

यह खयाली कारखाना होश में आना ज़रा।
जोश बेहोशी न रख दुखना दुखाना छोड़ दे ॥

राग विषयों का तो समझो आग मन में क्यों धरा।
लोडना भम्भोडना और मचमचना छोड़ दे ॥

चैन तब ही प्यारा नैन पैदा होंगे जब।
जो जगत विलास है विलाप भाग छोड़ दे ॥

दम ब दम का सहारा आस रखना सांस पर।
आप मुनसिफ अपना बन मन को मताना छोड़ दें ॥

जान कर बलवान शत्रु काम क्रोध और लोभ मोह।
मत बनो भगला भक्त बता बताना छोड़ दे ॥

डूबना विषयों में प्यारा लालची से लाभ क्या।
ख्वाब से जागो ज़रा धोका उठाना छोड़ दे ॥

'ठाकुरा' देह का अहम सब वहम है सब ब्रह्म है।
जो तेरा है जान जान मिलना मिलाना छोड़ दे ॥

– हलदरजुत्र क्वकरू

ओं हरे

जब तुमने ढूँढा अब पछान ओं हरे।
साक्षात सन्मान नाराण ओं हरे।

हरि भक्ति में डर नहीं करना,
बाहर भीतर आप ही अपना
ददि सर छोड कर धर ध्यान ओं हरे ॥

× × × × ×

माई बाप न पुत्र न भाई।
धन के लोभी धन बिना नाही।
इन के पीछे क्यों परेशान ओं हरे ॥

जो जो जिस के मथे पर लिखा है.
सो सो उसको मिले क्या डर है।
अपना आप पछान, जान जहाँ ओं हरे ॥

—जिन्द कौल (मास्टरजी)

१. प्रेम

प्रेम तो सुख प्रत्यक्ष है
द्वेष प्रकट संताप ।
प्रेम समान तो पुन नहीं
द्वेष समान न पाप

---

२. विश्वाधार प्रणाम

स्वामिन् सर्वेश्वर सर्वाश्रय,
सर्वाकार प्रणाम ।
भगवन् विश्वात्मन विश्वम्भर,
विश्वाधार प्रणाम ॥
आप हैं बन्धु भ्राता,
आप पिता और माता ।
आप ही धन और दाता,
प्रतिपालक और त्राता
आपको बारम्बार प्रणाम ॥

—नीलकण्ठ शर्मा

जय जय राम खरारी

जय-जय प्रभु विभु दीनदयाला
जय-जय राम खरारी ।
जय परिपूरण पीताम्बर-धर
अद्दर कष्ट निवारी ॥

सर्वाधारा निर्-आकारा
त्रिभुवन सारा प्यारा
तू है सब में व्यापक निर्मल
तू है सब से न्यारा
कर्ता धर्ता हर्ता भर्ता
भक्तन के हितकारी ॥

ना मैं जानूँ भक्ती तेरी
ना मैं जोग पछानूँ
ना मैं धर्मी ना मैं कर्मी
ना कोई साधन जानूँ
मैं हूँ मतिमन्द बालक जैसा,
तू मेरा रखवारी ॥

—दुर्गा प्रसाद काचरू

पंकज

जल के अरमानों का सार
जलदेवी का चित्रित प्यार
मन्द समीरण का सुविकार
हृत्तन्त्री का कोमल तार
सरवर के हिय का तू हार !

बाल कुसुम का रे तू प्राण
अवलम्बी शिशु सा नादान
उलझी - अलक - सुगन्ध सेमान
सुलझी मृदुल सुरीली तान
मादकता का मधु आख्यान !

प्रकृति का साक्षात् विनय
दूर गीत की सुमधुर लय
शीतलता का वर संचय
दीन कीच का भाग्योदय
संस्कृति का रसपूत हृदय !

—दीनानाथ नादिम

हे मेरे सन्यासी

देव मेरे करुणा के सागर' हे मेरे सन्यासी,
खोलो द्वार' मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी।
बाहर उमडी उमडी आँधी भीतर दहके ज्वाला
धरती पर आकाश से उतरी आती है मधुशाला
छलक रही है नीरस जीवन में भक्ति की हाला
तड़प तड़प कर तुझको ढूँढें अखियां प्यासी प्यासी
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी

वह देखो चपला ने हंस कर अपने दांत दिखाये
कलियाँ मुख अब कैसे खोलें कमल किधर मुस्काये
मतवाली कोकिल क्या चहके कहां पपीहा गाये
हाय यह मन्त्र किसने फूंका "सुख के संग उदासी"
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी

आई है तेरी करुणा की ओर लिये अभिलाषा
थकी थकी पग पग पर ठोकर खाये मेरी आशा
होंटों पर है चुप्पी प्रेम की नज़रें भाषा भाषा
मुख पर महकी महकी आभा शर्मीला संध्या सी।
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी

तेरे मन्दिर के प्रांगन में मेरे असुवन मोती
और वेदना अपनी बैठी माला जाय पिरोती
काँप रही है दीप शिखा में मेरी भ्रान्त की ज्योति
आशा बाहें फहलाये है व्याकुल पुष्प-लता सी
खोलो द्वार मुझे आने दो मन मन्दिर के वासी॥

(१९४२)

—दीनानाथ नादिम

उड़ान

संभव है सूर्योदय होगा।
काली काली उन चट्टानों के बीचोंबीच
निशा सोई है।
और उसके छितराये बालों पर टपकी है उज्वल ओस
और ऊपर से अलसाई इक पगडंडी
कंपित कंपित,
चली आरही है धीरे से--
संभव है सूर्योदय होगा!
एक सेना सौ गीली गीली
किरणों की उमड़ घुमड़ आती है
जैसे छुट्टी होने पर
विद्यालय उगल रहा हो बच्चे
या कान्ह हो अघासुर का पेट फाड कर
बाहिर आया।
हर एक खिडकी पर थपकी दे
हर द्वार की सांकल बाजे—
सब सोये हैं—
जन्म जन्म से सब सोये हैं।
किस को याद रही वे बातें—
कौन अतीत की गाथा सुन ले?
होगा सूर्योदय होने दो—
संभव है सूर्योदय होगा

(१६६७)

—पृथ्वीनाथ पुष्प

नवजीवन

वसुधा के मुरझाए मुँह पर
माधव नव आभा ले आया
पतझर से पथराई आँखों में
सोया चेतन अंगड़ाया

खलिहानों की सूखी ऐंठी
चमड़ी की उलझी झुर्रियों में
नवजीवन की हरियाली ने
यौवन को साकार दिखाया

जाड़े की कर्कश जड़ता से
पीड़ित शोषित पौधों के
हिय में वासन्ती मनुहारों ने
जीने का अनुराग जगाया

कुसमों की मृदु मुस्कानों ने
मानव के बहरे कानों ने
नवयुग की नव ललकारों का
नीरव नूतन सोज़ सुनाया

चमकीली धूपों की छब से
भीनी फुर्तीली पवनें भी
जागृति का नर्तन करतीं हैं—
कण-कण में नव जीवन आया

पर ठिठुरे श्रमियों के भी
जीवन को मधु सरसायेगा क्या
शोषण के भीषण जाड़े से
धरती ने छुटकारा पाया ?

—जानकी नाथ कौल 'कमल'

अनुपम यह तम्बूर

अनुपम यह तम्बूर
हे विराट ! हाथों से तेरे
बजता जग - सन्तूर ।

ज्ञान कर्म के दो हाथों से
बाहर भीतर के श्वासों से
स्थावर - जङ्गम भावरूप में
चलता है भरपूर
अनुपम यह तम्बूर ।।

कोयल की यह कूक मनोहर
काँग - काँय वह बनता दूबर
मिश्रित मनहर ध्वनि में कैसे
नाच रहा मन - शूर
अनुपम यह तम्बूर ।।

बन बीहड में हरि केहरि यह
धाड़ रहे और दौड़ रहे वह
सर्प - जाति निस्तब्ध भाव में
वाद्य बजाते दूर
अनुपम यह तम्बूर ।।

जग के कोलाहल में स्वर है
व्यथा व्यथित - मन के निर्भर है
पलकों से चुपके से बहती
दग्ध निराशा क्रर
अनुपम यह् तम्बूर ।।

स्वर्निल भविष्य ध्वनिमय बजता
भूत-भूत--घन गौरव लजता
वर्तमान की चंचल छाया
उड़ता है कर्पूर
अनुपम यह तम्बूर ।।

फेनिल नीरधि निन्दद्य नहीं है
घन-गर्जन का बिन्दु यही है
सिन्धु बिन्दु का योग मापने
चलती है ध्वनि पूर
अनुपम यह तम्बूर

हे बिराट् ! हाथों से तेरे
बजता जग सन्तूर
अनुपम यह तम्बूर ।।

—गंगाधत्त शास्त्री "विनोद"

मिटना ही तो बनना है

(१)

एक बीज मिटता-मिटता,
कितने बीज बना जाता,
एक दीप बुझता-बुझता,
कितने दीप जला जाता,
एक चाँद चलता चलता
अगणित तारे चमका जाता
एक फूल मुरझाता वन में
कितने फूल खिला जाता।

(२)

कितनी बूँदे दे देकर,
सावन का बादल मिट जाता,
नदियों को यौवन दे जाता,
सागर का उर लहरा जाता,
मिटते सूरज की लाली भी,
धरती को साड़ी पहिरा जाती
एक लहर मिट कर अगणित,
लहरों को पैदा कर जाती।

(३)

कितने पग मिट मिट कर,
मंज़िल की दूरी ढो लेते,
कितने घर गिर-गिर कर
नूतन भवन बना जाते,

एक पेड़ गिरता - गिरता,
कितने पेड़ जना जाता,
एक पवन का झोंका चलता
कितने कमल खिला जाता

(४)

एक प्रलय का झोंका भी
नूतन सृष्टि रचा जाता
विकृतियों के अंधड़ में
नव-युग दीप जला जाता
जीवन का त्योहार मनाकर
वीर बाँकुरा मतवाला
एक प्राण की आहुति देकर
कितने प्राण बचा जाता।

(५)

जीवन की पुस्तक में भी,
कितने अध्याय जुड़े ही रहते,
एक एक कर उन्हें पढ़ें तो
शत-शत रहस्य हैं खुलते रहते:
इसी लिए मिटना ही बनना
औ बनने को कहते मिटना
मिट - मिट कर प्रेमी पतंग भी
जीवन को अमर बना जाता।

—मोहन लाल सर

एक पत्थर

धूप से
चमका
नर्तकी नदिया के किनारे
एक पत्थर।
एक पत्थर,
थिरकती उर्मियाँ
छूकर जिसे
रंग-रिक्त हो जाती
और,
विवश होता पाषाण
घाव को वाणी
न देने में।
उस दिवस की
सुधि संजोए है अभी तक।
किया आघात जब,
तरेरी, तिलमिलाती
बरसात ने
उस पर।।

चारों ओर
बरसे बाण
सहमा सहमा
सिकुड़ रहा पाषाण।
रहा बेहोश, बेसुध कुछ समय तक।
अनन्तर—
दृगों को कुछ मसल कर,
साँस खींची बहुत लम्बी,
एंठा
और, देखा।
प्रत्यक्ष था जग रूप।
(मलिन और धूलि से लथ-पथ धरा को
ढ़क रहा तारकों से सुशोभित नील नभ)
माना कि है आभार यह
प्रति आघात का।
किए जो
तृषित हृदय की
चिरांकाक्षित वांछना ने।
तुहिन के परत प्रति परत को
विक्षिप्त कर डाला।
और,

उभर आया पाषाण था।

भू-गर्भ से।

डटा तब से वहीं था।।

धूप से चमका
तो,
पुजारी की आबद्ध की दृष्टि।

जगी श्रद्धा।

माथे पसीना पोंछ कर

पत्थर उठाया।

सजाया जाकर

परिधि भीतर

बनाई एक प्रणाली।

चढ़ाते रहे फूल और जल।

द्वार पर लिख दिया

"देव - द्वार"

—पृथ्वी नाथ मधुप

मैं, नव-वर्ष और बधाई

काँच की—
मेरे अस्तित्व के ऊपर
एक और तह चढ़ी
घुटन बढ़ी
धड़कन भी
टिकटिकाती ही—
सिरहाने की घड़ी।
दीवार पर लटका
कैलेण्डर नया
हंसने लगा व्यंगभरी हंसी।
तुम्हारा—
वह दिपता चेहरा
शीत से सिकुड़े. पियराये—
साग के पत्ते-सा लगा।
[तीन-तीन बच्चियों की माँ !!!]
"समय बीत रहा
आयु-सोपान की पोड़ियाँ
चढ़ रहीं हैं—
बेटियाँ
और यहाँ

पेट से ही फ़ुर्सत कहाँ ?"
——तुम्हारी यह आवाज़
मन में कौंधी .
करोदने लगी !
और,
याद आई
जननी की
यह बात भी—
हर आने वाला वर्ष
जाने वाले साल को
हमारी आयु का—
एक संवत्सर दे जाता है।
और.........................।
आज
दीवारों की उठी सफेदी,
खूँटियों पर लटके लत्ते,
एक बाज़ूहीन लंगडी कुर्सी
सूनी आँखें फाडे—
तुम्हारा चूल्हा,
घिसे, खाली बर्तन,
अनचुकाई बिलें,
और..... ....
एक के बाद एक,

कभी समवेत में
कुछ कहतीं हैं;
चिल्लाती हैं !!
इस कच-पच से
कानों के पर्दे
फटे जा रहे
[घड़ी टिकटिकाए
और कैलेण्डर हंसते जा रहे हैं।]
दब रहा हूँ मैं—
काँच के भार के नीचे।
× × ×
एक सुन्दर—
बहुरंग वेल-बूटों वाले
लिफाफे में
दोस्त का तार आया है—
"नया साल मुबारिक !
! .... !! .... !!!

—अयूब 'प्रेमी'

ये कुटिल सी सर्प गतियाँ

ये कुटिल सी सर्प गतियाँ।
फिर बिखर कर बंध गई हैं,
हस्त रेखाएँ जटिल सीं।
गाइयों से फिसलता
अनजान
कवि का विवश जीवन
हो गया अंकित उतर कर लेखनी से।
या
वृष्टि - जल - अनुबन्ध से विरहित
बिखरते धूलि - कण
उड़ते हुए फिर जम गये हैं चेतना के
इस सफेद कागज़ पर।
या
काली रोशनाई में सनी
घृणित मकड़ी कोई घूम गई है,
चरण - चिन्हों को किए अंकित।
या किसी के शाप से शापित
अनिर्वचनीय
कुंठित भावनाएँ
सूक्ष्म सिमटी जा रहीं हैं।
नहीं कौमा यहाँ
छलते रहे

निस्सीम पथ।
पिछड़ते और
अनसुने से
रह गये कुछ प्रश्न-सूचक चिन्ह ?
अरे!
यह डौट......की आवृत्ति
बन कर
रह गया जीवन.......।

—मोती लाल चातक

'आज़ादी का दिन'

आज़ादी का दिन यह आज मनायें हम,

यह आज़ादी जिस के हेतु हंस हंस कर बलिदान दिये,
अभी जले थे दीप जवानी के आंधी में अभी बुझे
राखी के आराध्य ये भाई बंधन के दिन राख हुए,
हाय तिरंगे ध्वज में लिपटा ललिता का शृङ्गार जले,

यह दिन, यह क्षण, अजब सितम फिर भी क्यों ना गायें हम।
आज़ादी का दिन यह आज मनायें हम ।

शत्रु बावरा हमें सुनाता क्या तू गीदड़ भभ की,
म्यानों में तलवार नहीं अब तो बाहिर निकली,
हम स्वयं बने तांड्व और नृत्य किया टैंकों पर,
शंकर का क्रोधानल बन कर बरस पड़े जैटों पर,

जानसन ओ' विलसन को भैरव राग सुनायें हम,
आज़ादी का दिन यह आज मनायें हम ।

नन्दनवन में आग लगाये उसकी खैर नहीं है,
शिवा शेर की मांद में आये उसकी खैर नहीं है,

सुप्त मरण को आज जगाये उसकी खैर नहीं है,
अजगर के आगे आ जाये उसकी खैर नहीं है,

पथ से भटके राही को सच्चा पंथ दिखलायें हम।
आज़ादी का दिन यह आज मनायें हम।

संभल अरे जयचन्द तुम्हारा बीत गया युग,
नहीं अकेला पृथ्वी अब उसके संग-संग देश सकल,
गोरी हो चाहे हो गोरा अब दाल नहीं गल सकती है,
माओ त्से तुंग के चेलों की अब चाल नहीं चल सकती है।

हल्दी- घाटी के रणबांकुर उस रण की याद जगाये हम
आज़ादी का दिन यह आज मनायें हम।

—रोशन लाल कौल

ढलती सन्ध्या बढते साये

प्रशान्त, स्निग्ध ज्योत्स्ना
नीरव तट
बहती नौका
शान्त सरोवर में
आया एक हवा का थपेडा
होने लगी डाँवा डोल
नौका, पर
न रुक सकी लहरें
आवेग में
डूबने का भय
लहरों के चम्बुन पर चुम्बन
छली गई।
छली गई!!
गिरी गाज।
मंझधार में
भीषण नृत्य में लीन
सघन अंधकार
पुलिन अज्ञात
लगी तट।
शिथिल अंग
खवैया संग
भाव-कर्तव्य के द्वन्द में लीन
बचाए अस्तित्व
शेष जीवन का
नौका फिर बहने लगी
नीरव तट पर
पहले सी अनाथ

—शान्ति वीर कौल "नवप्रभात"

रूपहाट से अमरनाथ तक

पलकें बोझिल बोझिल क्यों हैं?
खुल गईं आँखें खुल जाने दो,
एक विवशता, बाल्यावस्था,
दुःख और सुख से रहित निरामय,
खुल गईं आंखें खुल जाने दो.
लेकिन यह कैसा कोलाहल?
क्या है, कैसे, क्योंकर है यह?
वह देखो वह रूपहाट है.
आहों का सौदा होता है,
बूढ़ा वैभव हंसता जाता है,
जवां ज़रूरत सिसक रही है,
और कल्पना मर जाती है.
उभर रही है मौन वासना,
कीड़े कुलबुल, कुलबुल कीचड़.
एक बवंडर, एक पिपासा,
हलचल कीड़े झिलमिल मोती,
कुछ पल कहीं और नींद लूँ?
अबकी तो सुनसान है सब कुछ,
ध्यान लगाऊँ, योग जमालूँ?
यह क्या?
तीर है सनसन.
हरिण हैं, घायल,

अरे......यह कौन बोला ?
नीरवता को किसने तोड़ा ?
रैन अंधेरी, नूपुर बाजे,
किसने अब की आम उगाया ?
अब क्या होगा,
हरिण बेचारा,
जाने भी दो,
किससे किसको गर्ज़ पड़ी है।
कुछ पल कहीं और नींद लूँ
(पर) नींद में भी सपना आता है
फिर क्या सोना
लेकिन........यह क्या ?
पर्वतराज खड़ा है आगे,
द्वार है शायद· अंधियारा सा,
बीच खड़ा है, प्रहरी ऊंघ रहे हैं शायद,
चलके देख आऊँ तो,
यह क्या भाई ?
अमरनाथ है,
अमरनाथ में क्या होता है ?
जाके देख आओ ना।
जाऊँ... ... ... जाऊँ ?
ना जाऊँ तो बाट जोह लूँ
किसकी... ... ... किसकी ?
कैसा उज्जवल यह प्रकाश है,
मुक्तामाला शांति बीज हैं,

कैसा अद्भुत यह भारत है
इधर वासना उधर शान्तिः है,
यह वैशाली की नगरवधू
वह बुद्ध, सिद्धार्थ, तथागत है.
खुल गई आँखें कुछ कर पाया,
दुःख सुख का अनुभव हो आया
नहीं तो क्या कर पाता मैं?
कैसे जी पाता दुनिया में?
पलकें बोझिल बोझिल क्यों है?

—:o:—

—कु० आबिदा अहमद

किसान

है मेरे भारत की शान

मिट्टी की गोदी में है यह राजा कौन महान् ।
खेतों का स्वामी यह भोला अनुपम और अनजान ।।
नील व्योम में संचित करता इन्द्रदेव ही इसकी खान ।
यही असल में सही रूप में है मेरे भारत की शान ।।

नहीं उठाता कभी दृष्टि यह इस जगती के वैभव पर।
सब कुछ लगता सुन्दर इस को बैठ मज़े से खेती पर ।।
रात दिवस करता अथक श्रम भारत का देवता महान् ।
इसकी पूँजी बैंक तिजोरी सब कुछ ही है यह खलिहान ।।

क्यों न बन्दनीय हो यह सब का क्यों न प्राप्त हो सब का मान ।
यही अर्चनीय यही सेवनीय यही हृदय का सुन्दर गान ।।
इसके उर-निर्झर से कल कल करती आती प्रीति की तान ।
इसकी भाषा इसकी इच्छा इसका हल है इसकी जान ।।

——:o:——

कथा-धारा

- जवाहरलाल कौल
- डॉ० अयूब 'प्रेमी'
- डॉ० भूषणलाल कौल
- प्रो० रामदत्त शर्मा
- डॉ० जवाहरलाल हुण्डू
- मनोहर भट्ट
- चूनी परिहार
- मनमोहन
- सुदेश आनन्द
- कौशल्या चल्लू
- सुभाषिणी कौल
- बदरुन्निसा

सम्पादक :

डॉ० निज़ाम उद्दीन

पूर्ववचन

कश्मीर में कहानी कहने की प्रवृत्ति बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। यहाँ की लोक कथाओं की परम्परा साहित्यिक मूल्य रखती है। सर्वाधिक लोक प्रिय 'कथा सरित्सागर' ग्रन्थ कश्मीर के राजा अनन्त के राज्य में सोम देव द्वारा प्रणीत है। भारतीय कहानियों की परम्परा में यह एक अनुपम रचना है जिसने भारत के अन्य प्रदेशों में लोक कथा के बीज का वपन किया है। हितोपदेश, वैताल पंचमी शतिका सिंहासन द्वात्रिंशिका इत्यादि ग्रंथों पर 'कथा सरित्सागर' का यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कुछ लोग कथा सरित्सागर को ही इसका मूलस्रोत मानते हैं। कुछ भी हों कश्मीर में लोक कथा के आविर्भाव की परम्परा ही आधुनिक कहानी को कलात्मक अभिव्यक्ति देने में समर्थ सिद्ध हुई है।

कश्मीर में आधुनिक कहानी का सूत्रपात निस्सन्देह पाश्चात्य कहानी के शिल्प द्वारा ही अनुप्रेरित मानना पड़ेगा. फिर भी वस्तु नितान्त मौलिक है। जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र में कश्मीरी महिलायें अग्रणी रही हैं कहानी के क्षेत्र में भी वे इस श्रेय की अधिकारिणी हैं। आधुनिक कहानी का प्रारम्भ श्रीमती सत्यवती मलिक द्वारा हुआ है। लेखिका का जन्म सन् १९०६ ई० में श्रीनगर में हुआ। युवावस्था में कश्मीर के प्रभाव-रूपों की अभिव्यक्ति के लिए साधना-क्षेत्र दिल्ली हो गया। 'विशाल-भारत' के द्वारा साहित्य-जगत् में परिचित हुईं। इनके कहानी संग्रह 'दो फूल' और 'वैशाख की रात' का हिन्दी जगत् में बड़ा सम्मान हुआ। गृहस्थ-जीवन सम्बन्धी रचनाओं में नारी-जीवन का सफल चित्रण हुआ है। अनुभूतियाँ वात्सल्य प्रेम के रूप में मर्मस्पर्शी हैं। ये प्रगतिशील साहित्य-कारों में अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं। आधुनिक पश्चिमी कहानी के शिल्प को इन्होंने आत्मसात कर लिया है।

कश्मीर के सबसे प्रतिभाशाली कहानीकार श्री प्रेमनाथ दर हैं। आपने कहानी और नाटक को अधुनातम रूप में प्रकट किया है। जन्म श्रीनगर के बदियार बाला मुहल्ले में ३० जुलाई सन् १९१४ ई० में

हुआ। श्री प्रताप कालेज से १९३४ में बी० ए० पास किया। तत्पश्चात् पश्चिमी पंजाब में यूनानी दर्शन का अध्ययन किया। यहीं लाहौर में बौद्धिक राजनीतिज्ञों के सम्पर्क में आये और मार्क्स का गम्भीर अध्ययन किया। लैनिन के कृतित्व पर Iskara तथा Zaria में लेख लिखे। सन् १९३७ ई० में कश्मीर लौट आये तथा प्रगतिशील राजनीति में सम्मिलित हो गये। सन् १९३८ ई० में राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। इन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों के कारण वे लाहौर आये और अखिल भारतीय कांग्रेस के सभापति नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जी से मिले। आचार्य नरेन्द्र देव तथा पण्डित जवाहर लाल नेहरू जी से भी सम्पर्क हुआ। सन् १९३९ ईसवी में किन्हीं कारणों से राजनीति से वे अलग हो गये। देहली में विवाह किया और हिन्दोस्तान टाइम्स में काम करने लगे। सन् १९४२ ई० से आल इंडिया रेडियो में सेवा कर रहे हैं।

इनकी सबसे पहली रचना एक कहानी है जो 'गलत फ़हमी नाम से उर्दू की प्रसिद्ध पत्रिका 'अदबी दुनिया' में प्रकाशित हुई। इस कहानी का बड़ा स्वागत हुआ तथा भारत के सुप्रसिद्ध आलोचक मौलवी सलाहउद्दीन अहमद ने बड़ी प्रशंसा की। दूसरी कहानी इसी पत्र में 'दूध' शीषक से छपी। इस कहानी ने उन्हें और भी सम्मान दिया। तीसरी कहानी 'चराहावा' बम्बई के प्रसिद्ध पत्र में प्रकाशित हुई। जिसे श्री उपेन्द्र नाथ अश्क ने भारत की सर्वश्रेष्ठ दस कहानियों के अन्तगत गिना तथा कृष्णचन्द्र ने अपनी पुस्तक "हल्के साये में" में दस वर्षों की अवधि में सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में घोषित किया।

इस के पश्चात् दर की 'कागज़ के वासुदेव' 'आख थू' "उतराई गिध, नीली आँख बांकरी का एक टुकड़ा' 'तुर दि बस' 'खिड़की' इत्यादि रचनाएँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं। इनको दो संग्रहों— कागज़ के वासुदेव तथा "नील आँखें" के रूप में भी प्रकाशित किया है। इनकी हिन्दी कहानियाँ सारिका तथा धर्मयुग में प्रकाशित हुई। 'घर की बात' उनका सफल नाटक है जिसे कल्चरल अकादमी ने १०००) रु० के प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया है। भविष्य में लेखक से बहुत बड़ी सम्भावनाएँ हैं।

श्रीमती विमला रैना कहानी तथा नाटक-क्षेत्र में प्रसिद्ध हो चुकी है। 'हम तुम और वह' तथा 'बुझे दीप' कहानी संग्रहों का बड़ा आदर किया गया है। नाटक 'खाली साहब' भी बहुत प्रसिद्ध हुआ है। कश्मीर में एक धारा कश्मीरी भाषा के कहानीकारों की भीं है जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से कश्मीर में हिन्दी कहानीकारों को प्रभावित किया है। इन कहानी कारों में सर्वश्री अक्खतर मही-उद्दीन, बंसी निर्दोष, डॉ० शंकर रैना, श्री अली मुहम्मद लोन, अवतार कृष्ण रहबर आदि हैं। ये सबसे पहले उर्दू साहित्य में प्रवेश पाने का प्रयास करते रहे लेकिन बाद में अपनी मातृ भाषा कश्मीर को गौरव प्रदान किया। यह जागरुक कलाकारों का वर्ग है जिसने कहानी को नये आयामों में प्रस्तुत किया है। यहाँ के हिन्दी कहानीकार इनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। यथार्थ की दृष्टि इन्हीं कहानीकारों से मिली है। इनसे प्रभावित हिन्दी कहानीकारों का यही नया वर्ग कश्मीर में जन्म ले रहा है जिसमें हरिकृष्ण कौल, मोहन कृष्ण दर, रत्नलाल शांत जवाहर लाल कौल, मनोहर भट्ट, सुमन भारती आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त एक स्वतंत्र धारा भी है जिसमें कश्मीर में बाहर के आये हुए साहित्यकारों का योगदान महत्वपूर्ण है। इस वर्ग का प्रभाव कुछ नवीन कहानीकारों पर पड़ा है। डॉ० शकील-उल-रहमान डॉ० अयूब प्रेमी, प्रोफेसर रामदत्त आदि की साधना-भूमि कश्मीर ही है जिसके फलस्वरूप विश्वविद्यालय के प्रांगण में कुछ विद्यार्थी साहित्यकारों का उद्भव हुआ। इस वर्ग में डॉ० भूषणलाल कौल, डॉ० जवाहर लाल हन्डू कुलदीप रैना, सुदेश आनन्द, वीना डुल्लू, सुभाषिणी कौल कौशल्या चलू आदि उल्लेखनीय हैं। कश्मीर में हिन्दी कहानो तथा एकांकी नाटकों की रचनाओं की बहुत महत्वपूर्ण सम्भावनाएँ हैं। नवोदित साहित्यकारों में शिल्प के निखार की आशाएँ हैं। श्री मनमोहन, चूनी परिहार तथा बदरुन्निसा की रचनाएँ उत्साह-वर्द्धन की दृष्टि से इस संकलन में दी जा रही हैं।

प्रस्तुत संकलन में केवल कश्मीर में विद्यमान साहित्यकारों में से प्रत्येक वर्ग के कहानीकारों का उदाहरण दिया जा रहा है। इस दृष्टि से इसे प्रतिनिधि संकलन कह सकते हैं।

परीमहल

—जवाहरलाल कौल

दो मास बाद फिर साधना का मुस्कराता मुख देखने को मिलेगा। साधना अकथनीय सुख की तरह प्रिय है। गुस्से में भी वह कितनी अच्छी लगती है। राजीव को उसे चिढ़ाने में मज़ा आता है क्योंकि वह जानता है कि जितना आसान उससे झगड़ा करना है उतना ही आसान है उसे मनाना। मगर आज साधना के क्रोध को शान्त कर सकने का राजीव को विश्वास नहीं था। दो मास पूर्व जब वह दिल्ली से श्रीनगर गयी थी तो अपनी सहेली कल्पना के लिए उस की शादी पर कोई अच्छी सी भेंट की वस्तु लाने को कह गयी थी! कल्पना की शादी का उसे बहुत दिनों से इन्तिज़ार था। "उसकी शादी पर मैं दो बातें करूँगी, उसने एक दिन कहा। 'उसे कोई ऐसी चीज़ दूँगी जो सारी ज़िन्दगी मेरी याद ताज़ा रखे।"

"और दूसरी ?' उसके सुख में सुख लेते हुए राजीवन ने पूछा

'और जी खोल कर गाओंगी'

राजीव अवाक् उसको ओर देखने लगा।

'तुम्हें मालूम है जब हमारी शादी हुई थी तो गाने की मेरे मन में तीव्र इच्छा पैदा हो गई थी मगर लाज के मारे गा नहीं सकी वह कमी अब पूरी करूँगी।" और वह खिलखिला कर हंस पड़ी। कुछ क्षण चुप रहने के बाद राजीव की ओर मुड़ कर, 'तुमने कल्पना को नहीं देखा है ना ? उसकी शादी पर आकर देख लेना।' शादी आई मगर कल्पना के लिए राजीव कोई वस्तु नहीं लाया क्योंकि वह यह निश्चय ही नहीं कर पाया कि सारी ज़िन्दगी किसी की याद ताज़ा रखने के लिए कौनसी चीज़ उपयुक्त होगी। .... सामने की सीट पर दो व्यक्ति बातें कर रहे थे और राजीव को लगा कि उसने एक परिचित

शब्द सुन लिया। 'परीमहल'। शायद वह कश्मीर भ्रमण का कार्यक्रम बना रहे थे और एक मुग़ल कालीन भवन का नाम लेने में कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी मगर 'परीमहल' शब्द के साथ, पहाड़ पर देवदारु और चीढ़ के वृक्षों के बीच परीमहल की सदियों पुरानी और भग्न दीवारों की तस्वीर के साथ ही उनसे जुडी याद-यादों का सिलसिला भी राजीव के मानसन पट पर उभर आया। शायद अब भी उन खंडहरों में कल्पना के लिखे हुए नाम दिखाई देंगे।.....

कालेज का एक युवक शिविर चश्मा शाही में लगा था। राजीव शाही स्रोत के किनारे पर बैठ कर पानी में अपना प्रतिबिम्ब देख रहा था कि अचानक उसे लगा कि कोई और भी पानी में झाँक रहा है, विशाल और शालीन! उसने नज़र उठाकर देखा और पानी में प्रतिबिम्बित पहाड़ उसे पहली बार बहुत बड़ा और बहुत रहस्यमय लगा सब से अधिक रहस्यमय थीं परीमहल की बूसीदा दीवारें जो कभी मुगल राज कुमार दारा के पदचापों से प्रतिध्वनित हुआ करती थीं मगर जहाँ आज जंगली जानवरों और सांपों का डेरा है। उसे लगा कि परीमहल उसे अपनी ओर बुला रहा है। उसे ज्ञात नहीं कब उसके क़दम पत्थरों और झाड़ियों के बीच पहाड़ की तरफ चल पड़े और जब उसे इस बात का एहसास हुआ तो कल्पना उसके साथ थी।

'तुम वापस जाओ कल्पना' उसने कहा "क्यों?"

'यहाँ किसी ने राजमार्ग नहीं बनाया है झाड़ियों से अंग छिल जायेंगे।' राजीव ने झुंझला कर कहा। वह नहीं मानी।

"बेहोश हो जाओगी .. .."

"तुम मुझे यहीं छोड़ देना".........

.......जब वह महल के अन्दर घुसे तो दोनों का दम फूल गया था। ईंटों की एक बड़ी दीवार के सहारे दोनों धम से बैठ गये जैसे किसी ने ठेले से आटे की बोरियाँ नीचे फेंक दी हों। छिपकलियों और झींगुरों की आवाज़ में भी उन की सांस का स्वर सब से प्रखर था। कुछ समय तक दोनों खामोश बैठे रहे।

क्या सोच रहे हो'? कल्पना के इस प्रश्न ने राजीव को चौंका दिया। एक क्षण बाद वह बोला –

"तुम कहां तक मेरा साथ दोगी?"

'प्रलय तक' राजीव उसके चेहरे की ओर देखने लगा मगर कल्पना का ध्यान कहीं और था। वह महल की दीवार पर एक पत्थर से लिख रही थी –

राजीव और कल्पना १९५८

राजीव दूर डल झील के नीले पानी में तैरते शिकारों को देखने लगा। कितने ही लोग इस सरोवर के तट पर बने मुग़ल बागों में आते हैं मगर शायद ही कोई 'परीमहल' में झांकने का कष्ट करता है। शानदार और सुसज्जित वाटिकाओं के निकट परीमहल का खण्डहर अछूत की तरह अभिशप्त पड़ा है। किसी ज़माने में यहाँ तत्व ज्ञान की चर्चा हुआ करती थी और वातावरण मधुर संगीत से झंकृत होता रहता था। मगर अब यहां सांप और छिपकलियाँ घूमते रहते हैं और रात को गीदड रोते हैं। यह समय के साथ क़दम मिलाकर नहीं चल सका और समय ने इसे 'भूत' बना दिया। कल्पना दीवार पर लिख चुकी थी। राजीव ने पूछा 'क्या होगा इससे?' फिर जवाब की प्रतीक्षा किए बिना ही कहा 'जिसमें आगे बढ़ने का दम ही नहीं हो, उस के माथे पर सामयिकता की मोहर लगाने से लाभ?'

'तुम तो पहेलियां बूझने हो' कल्पना बोली पहेलियां? उसे याद आया कि वह उस दिन कालेज की लाइब्रेरी में किसी पत्रिका की वर्ग पहेली हल कर रहा था। कि किसी की आवाज़ ने उसका ध्यानभंग कर दिया। एक लडकी उसी मेज़ के सामने खड़ी उसे घूर रही थी, जिस पर वह झुका हुआ था।

"आप ने मुझ से कुछ कहा?' राजीव ने पूछा। 'ओ, आप सुन भी सकते हैं' उस लडकी ने व्यंग्य किया राजीव कुछ क्षण तक अवाक् उसे देखता रहा मगर अपने ध्यान में खलल पड़ने से वह खीझ

तो गया ही था, इस तरह अकारण झिड़की खाने से वह क्रुद्ध हो उठा" "मैं चाहे जो कुछ भी क्यों न सुन लूँ किसी का व्यंग्य नहीं सुन सकता।" दोनों क्रुद्ध बैलों की तरह एक दूसरे को घूरने लगे।

"आप समझते हैं कि इस कालेज की हर चीज पर केवल आप का ही अधिकार है ?"

'आप क्या पहेली बूझ रही हैं ?'

'पहेलियों में रुचि केवल आपको हो सकती है जो घन्टे भर से इस पत्रिका को नहीं छोड़ रहे हैं।'

राजीव के हाथ में अब भी वर्ग पहेली वाली पत्रिका थी। बात उसकी समझ में आ गई। मुस्कराते हुए बोला' इसमें गुस्से की क्या जरूरत थी, मुझ से कहतीं, मैं पहले आप ही को फिल्म स्टारों के चित्र दिखा देता। लीजिए।'

वह उसे जाते हुए देखती रही। तब यह मामूली बात थी, आज स्मृति बन कर बहुत महत्वपूर्ण और सुखद बन गयी है। ... रेलगाड़ी चीखी और राजीव ने खिड़की से बाहर झांक कर देखा। प्लेटफार्म आ चुका था। आस पास के यात्रियों में खलबली मच गयी थी। उसने झट अपना सूटकेस उठा लिया और द्वार की ओर लपका श्रीनगर जाने वाली बसों में आजकल भीड़ रहती है इसलिए जल्दी बस स्टैंड पर पहुंच जाना चाहता था। वह गाड़ी से नीचे उतर पड़ा। मगर कुछ सोच कर उसने जेब से एक कागज़ निकाला, साधना का पत्र था

"......तुम को कई बार कहते सुना है 'तुम्हारी सहेली है मेरी तो नहीं' मगर इस बार यह उत्तर नहीं लिखना। कल्पना मेरी सब से प्रिय सहेली है। उसकी बात दूसरों से अलग है वह विशिष्ट है। ... वह स्वयं लिखती मगर आप को अभी देखा नहीं है ना इसलिए झिझकती है..."

राजीव मुस्कराया। "कल्पना विशिष्ट है' यह उन सब बातों के

बारे में सोचने लगा जो कालेज छोड़ने के बाद हुई थीं और जब एक दिन सांप की केंचुली की तरह उसने भूत को पीछे छोड़ दिया था। साधना वर्तमान की प्रतीक बनकर आयी। उसने कभी राजीव के अतीत में झांक कर देखने की कोशिश नहीं की। एक कुली ने सामने आकर पूछा।

'साहब सामान बस स्टेंड तक ले चलूँ'

'नहीं' राजीव पास के बेंच पर बैठ गया।

'ट्रेन वापस दिल्ली किस समय जाती है ?"

'साढ़े सात बजे' कुली कंधे झटका कर चला गया। राजीव ने एक सिग्रेट सुलगायी और अपने आप से बड़बड़ाने लगा "कल्पना विशिष्ट है... परीमहल की तरह ...।

—डॉ० अयूब 'प्रेमी'

झूठ–सच

"आप से मिलिए --आप, कलाकार अनूप।
ऐं, अनूप!
हाँ, अनूप आप का उपनाम है।
और आप! डाक्टर गिरजा कुमार।
अरे भई! तुमने तकल्लुफ़ से काम लिया। कहना तो इस तरह चाहिए—
आप—प्रेम-पंछी'
आप — अजायब घर
आप — कविराज।
और आप—हमराज़

कैप्टिन माथुर के इस नये ढंग के परिचय को सुन कर क्लब में बड़े ज़ोर का क़हक़हा लगा। वे दोनों भी अपने परिचय पर ज़ोर से हंस पड़े थे। कवि थोड़ा सा पागल ज़रूर होता है। वह पागल का डाक्टर। कवि कलाकार का उससे ज्यादा कौन घनिष्ट सम्बन्धी हो सकता है। एक दिन वह सचमुच उसका हमराज़ बन ही गया। वह अनूप से रोज़ मिलता या अनूप उससे रोज़ मिलता। अनूप ने उसके अन्दर साहित्य के प्रति अमिट रुचि जगा दी थी। एक दिन हमेशा गम्भीर रहने वाले अनूप से उसने पूछ ही लिया—

अनूप डियर!
हाँ भाई!
तुमने कभी प्यार किया है?
नहीं।
नहीं? अच्छा. तुम्हें किसीने प्यार किया है?
किसी ने भी नहीं।

उत्तर सुनकर उसे संतोष नहीं हुआ क्योंकि अनूप का भोला और सुन्दर

व्यक्तित्व प्यार के लिए ही बना है। उसे जो कोई देखता है, मुग्ध हो जाता है। लेकिन इसके भोलेपन की भी हद है। क्लब की मिस ब्यूटी सुगन्धलता पहले दिन ही अपना सब कुछ न्योछावर कर चुकी है। आश्चर्य है उसे आभास तक नहीं। वह तो सचमुच अनूप ही निकला।

एक दिन फिर शाम के वक्त उसका दिल हमराज़ होने के लिए मचल गया—

अनूप! तुम्हें अपने दोस्त की कसम है।

भाई! कसम लौटाइये, मुझे मजबूर न करो।

लेकिन उसका दिल तो आज सत्याग्रह कर बैठा था। हार मानकर भोले अनूप को ज़िन्दगी का सबसे सुन्दर नग़मा सुनाना ही पड़ा—

"कालेज की एक लड़की— चंचल, सुन्दर और बुद्धिमान। अनूप के साथ पढ़ाई में मुकाबला। परीक्षा में हार कर कालेज के बाटनीकल गार्डन में स्वयं अनूप से मिली। अनूप उसकी सुन्दर बड़ी बड़ी आँखों की नीलाइयों में खो गया। कुमारी के पतले होंठों के कम्पन के साथ उसके दिल की धड़कनों का मधुर संगीत एकलय हो गया। लेकिन प्रणय-व्यापार में अनाड़ी होने के कारण उसके प्रेम का अपमान कर बैठा। उच्छ्वसित कुमारी से बेसुरा प्रश्न कर बैठा—

आपका अध्ययन कैसा चल रहा है?

ख़ाक!

मेरे पास चटर्जी की पुस्तक है, आपको ज़रूरत हो तो लाऊँ?

रहने दीजिए।

कहते हुऐ कुमारी ने आश्चर्य के साथ उसे देखा। झुँझलाहट और मूक वेदना के साथ दोनों हाथों से इस प्रकार नमस्ते की कि अनूप के होश उड़ गये। वह अपनी मूर्खता को समझ गया, लेकिन इतना न समझ पाया कि उसे क्या करना चाहिए था। वह चली गयी एक ऐसी उदासी और हीनता की तारीकी में डुबो कर कि तीन दिन तक कालेज जाने का साहस न कर सका। जब चौथे दिन कालेज गया

तो चहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उसको क्लास में घुसते देख लड़के और लड़कियाँ हँसने लगे। थोड़ी देर के बाद झुकी हुई पलकों को चोरी से उठाते हुए लड़कियों की तरफ़ नज़र घुमाई। कुमारी नीची नज़र किये हुए थी। प्रोफेसर साहब ने प्रवेश किया। सभी खड़े हो गये प्रोफेसर साहब ने क्लास पर सरसरी दृष्टि डाली और मुस्कराते हुए अटेंडेन्स रजिस्टर खोला। उस मुस्कराहट का अर्थ सारी क्लास समझती थी। एक के बाद दूसरा नाम बुलता गया। जब उसका नाम आया तो प्रश्न किया गया—

आप तीन दिन कहाँ रहीं?

सर में दर्द था?

सरिता ने तो कुछ नहीं बताया।

सारी क्लास ने ज़ोर से क़हक़हा लगाया। कुमारी ने शिकायत भरी नज़रों से अनूप की ओर देखा। अनूप ने झिझकते हुए अपनी दोनों आँखों को समर्पित कर दिया। इस समर्पण से, दिल की सच्ची पूजा से, देवी फिर खुश हागई। नाम बराबर बुलते जा रहे थे। उस का नाम न जाने कब बोला गया। उसे पता ही न चला। प्रोफेसर ने दुबारा नाम बोला, क्लास हँस पड़ी। तब उसे चेत हुआ वह सकपका गया। प्रश्न हुआ—

क्यों जनाब आप की तबीयत ठीक है?

जी जी जी—

कहाँ थे?

तीन दिन से बुखार आ रहा था, सर!

मैं पूछता हूँ कि अभी अभी कहाँ थे?

क्लास ने फिर एक साथ जोर से क़हकहा लगाया। प्रोफेसर ने भी हँसते हुए कहा— "मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारी तबिअत अब भी ठीक नहीं है।"

तब से दोनों एक दूसरे में खोये खोये रहा करते। यही क्रम साल भर लगा रहा लेकिन भीरु हृदय अनूप ने प्रेम की अभिव्यक्ति शब्दों द्वारा नहीं की। दोनों के होंठों को शायद विधाता ने सी दिया था लेकिन आँखों की वाचालता सब कुछ प्रकट कर देती थी। वे एक दूसरे के इतने निकट आगये थे कि भौतिक भेद दूर हो गया था। उन्हें अपने निर्विकार मिलन में अपूर्व सुख मिला करता।

समय बढ़ता गया। प्रेम प्रगाढ़ होता गया। फिर एक ऐसी शाम उदासी के घने बोझ से लदी हुई आ ही गई। वही बाटनीकल गार्डन। कई साथियों की महफ़िल में पीपल के नीचे मखमली दूब पर बैठे हुए अनूप इस गोष्टी के सभापति थे। कई साथियों के बाद नटखट दिनेश की कविता हो रही थी। सवाल हुआ— यह कविता किसकी प्रेरणा से लिखी गई है ? दूसरे नटखट साथी ने जवाब में कुमारी का नाम लिया। दिनेश भी सारी कविता का अर्थ उसी से जोड़ता हुआ अनूप की ओर देखकर हंसने लगा। अनूप को बहुत बुरा लगा। वह उठने लगा लेकिन दूसरे साथियों ने ज़बरदस्ती बिठा लिया। दिनेश ने एक गहरी आह छोड़ते हुए बहुत सी कहानियाँ सुना डालीं। विक्षोभ के साथ सभा विसर्जित हुई। अनूप की ज़िन्दगी में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। वह अपने रुहानी प्रेम की साँस ताड़ते देखने लगा। कुमारी भी उसके उदास उन्मन चहरे को देखकर उदास और दुःखी रहा करती। प्रोफेसर साहब इस साल ६० मील दूर दूसरे शहर में पहुँच गये थे। इसलिए अनूप ने भी शहर छोड़ने का इरादा कर लिया। एक दिन वह सेमीनार रूम में बैठा हुआ था। एकान्त में बैठा हुआ कुमारी के प्रति घृणा-भाव भर रहा था। आँखें फर्श पर गड़ी हुई थीं एकाएक उसे कुछ मालूम पड़ा। उसने अपनी नजर ऊपर को उठाई तो अवाक् रह गया। कुमारी छलछलायी आँखों के साथ खड़ी हुई है। उसके होंठ हिलने लगे—

मुझ से कुछ भूल हो गई है क्या ? मुझे माफ करदो।

कैसी भूल ? मैं कौन होता हूँ माफ करने वाला ?

क्या ...? कोई भी नहीं ?

हाँ, कोई नहीं।

मैं तुम्हे ऐसा न समझती थी।

मैं भी तुम्हें ऐसा नहीं समझता था। मेरी पूजा की तुमने कोई परवाह नहीं की। दिनेश से ...।

उसका नाम न लो। यह तो मेरा भगवान् जानता है कि मैंने सिर्फ तुम्हें ही प्रेम की दुनिया का स्वामी बनाया और जीवन भर...... तुम्हीं से हिफाज़त चाहती हूं। करोगे न?

कुमारी की आँखों से आँसू बहने लगे। अनूप का दिल पिघल गया। उसने रुमाल से आँसू पोंछ दिए। उसे घर पहुँचा कर वह लौट आया अभी वह उसकी परीक्षा लेना चाहता था और आज तक वह परीक्षा ही ले रहा है।

डाक्टर ने अपनी आँखों में आई बूँदों को साफ किया। फिर सोचने लगे— कैसे कैसे भावुक होते हैं ये लोग। सारी ज़िन्दगी कुमार रहने का इरादा कर लिया है उसने! मिस सुगन्धलता ने उसकी दावत की। अखबारों में खबर फैल गई कि दावत विवाह की नीयत से की गई है। कैप्टिन माथुर तो उसमें और भी रंग मिला रहे थे। डाक्टर ने अनूप से पूछा—

क्या यह सब सच है अनूप!

क्या?

यही अखबारों की खबर।

मुझे इतना नीच न समझो भाई! मुझे किसी की प्रेम-दुनिया की हिफाजत करनी है।

तब दूसरे दिन ही उसने अपना सामान बान्ध लिया। उन्हों ने बहुत आग्रह किया लेकिन वह न माना। चलते समय उन्होंने अपनी शादी में शामिल होने के लिए ताकीद की। आज पूरे दो साल हो गये हैं। न उसका खत आया और न डा० साहब को पता चला कि वह

कहाँ है? आज डाक्टर की शादी की दूसरी साल गिरह है। सविता ने घर को ऐसा सजाया है कि उनका दिल खुशी के मारे नाच रहा है। वे दोनों खुशियों के बीच दो साल से रहते आ रहे हैं। ऐसी नेक पत्नी को पाकर वे अपने को खुशकिस्मत समझते हैं। उन्हें सविता सामने आती दिखाई दी। सुन्दर वस्त्रों में लिपटी हुई वह दुल्हन बनी हुई है

थाल में दीपक जलाकर डाक्टर साहब की आरती उतारने लगी। उसकी नज़रों से मंगल की वर्षा हो रही है। होंठ लजीली मुस्कान से भले लग रहे हैं। वरमाला का सुन्दर दृश्य हर साल ताजा हो जाता है। डाक्टर की उँगली ने सिन्दूर भरी माँग में और भी सिन्दूर भर दिया वह कृतज्ञ दिखाई दे रही है। लो निर्मला भी कैप्टिन माथुर के साथ बधाई देने आ गई।

× × × × ×

टाई की नाट बाँध कर कोट पिन्हाती हुई निर्मला ने मुस्कराते हुए केप्टिन माथुर की आंखों में अपनी आँखें डाल दीं। माथुर साहब के चहरे पर मधुर हास फैल गया। वे अपना हैट उठाकर चलने को तैय्यार हुए कि उसने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली—

अभी नहीं ज़रा ठहर जाओ।

वह दौड़ती हुई गई और एक गुलाब की कली लाकर कोट के कालर में लगा दी फिर बोली—

हाँ, अब ठीक है।

केप्टिन ने खुश होकर निर्मला को अपने सीने से लगा लिया और प्रेम का पुरस्कार देकर फिर चलने लगे। निर्मला पीछे पीछे दरवाज़े तक गई। वे कार में बैठ गये, वह सतृष्ण उन्हें देखती रही। जब कार चलने को हुई तो उसने फिर एक बार कहा—

देखो जल्दी आ जाना।

अच्छा, डार्लिंग।

कहकर कैप्टिन साहब ने एक बार फिर प्रेम भरी नज़रों से अपनी नयी दुल्हन को देखा और कार स्टार्ट कर दी। जब कार से उठी हुई धूल ज़मीन पर खामोश हो कर बिछ गई तब निर्मला ने अपनी आँखें उधर से हटाईं और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

इतवार का दिन। हीवेट पार्क में पिकनिक मनाते हुए दोनों जोड़े। ऊँची नीची बनावटी पहाड़ियों के बीच में सुन्दर घास का मैदान। मैदान के बीच में फव्वारा जो केरी के लाल फूलों से घिरा हुआ दुगने आवेग के साथ प्रेम-फुहारों से उनको भिगो रहा है। निर्मला एक टक उसी दृश्य को देख रही है। केप्टिन निर्मला को स्निग्ध नज़रों से देख रहे हैं। डॉ० साहब लेटे हुए पत्रिका पढ़ रहे हैं और उनके पास बठी हुई सविता स्वेटर बुन रही है। यकायक डॉक्टर साहब चीख पड़ते हैं— वाह! खूब मिले यार! चौंक कर स्वेटर बुनना बंद करते हुए सविता ने पूछा— क्या मिल गया आपको?

निर्मला ने फव्वारे की तरफ से नज़र हटा कर शरारत भरे लहजे में कहा— मिल क्या गया? एक ढूँढो हज़ार मिलते हैं। उन्हीं में से कोई एक होगा। मेरा अन्दाज़ा ठीक है न जीजा जी?

कप्टिन माथुर ने क़हक़हा लगाते हुए कहा— तुम ने बिल्कुल पते की बात कह दी। कोई कवि होगा या कलाकार। इन्हीं लोगों से डॉक्टर का गहरा रिलेशन होता है।

सविता ने हँसते हुए कहा— अच्छा तो जनाब! छुट्टी के दिन भी साइकोलोजी की स्टडी कर रहे हैं।

'नहीं दीदी ये तो पत्रिका में से शिकार फँसा रहे हैं'— निर्मला ने फिर शरारत अंगेज़ लहजे में कहा।

डाक्टर ने झल्लाते हुए कहा— तुम लोग खामोश नहीं रह सकते तो कहीं घूमने क्यों नहीं चले जाते? मुझे लगता है कि पागलों की स्टडी करने से पहले तुम सब की स्टडी करनी पड़ेगी।

सविता ने हँसते हुए कहा— अच्छा जनाब ! नाराज़ क्यों हो रहें हैं। अब बताइए भी कि क्या मिला है आपको।

डॉक्टर ने पत्रिका खोलते हुए बताया कि इस अंक में उनके बिछड़े हुए दोस्त अनूप की कहानी छपी हुई है।

सविता ने सहज मुस्कान के साथ कहा— तब तो हम सभी सुनना चाहेंगे। निर्मला ने अनिच्छा दिखाते हुए कहा— "जीजा जी ! आप बोर क्यों कर रहे हैं ? सभी कहानियाँ झूठ हुआ करती हैं— जीवन से दूर। अगर प्रम के विषय में है तब तो सफेद झूठ ही होगा। मुझे तो कवियों और कलाकारों से सख्त नफ़रत है।"

डाक्टर ने बात का खंडन करते हुए कहा—"क्या झूठ और क्या सच ? जीवन का सत्य ही झूठ-सच है। किस का जीवन झूठ-सच नहीं है। कलाकार इस जीवन का आदर्श होता है। अगर कोई कलाकार से नफरत करता है ता वह अपने जीवन से दूर भागता है। झूठ-सच से घबराना ही उसकी हार है।"

केप्टिन ने हंसते हुए समर्थन किया—"वैरी गुड आइडिया। आप तो हमारे सामने एक बहुत बड़ी फ़िलासफी रख रहे हैं। अनूप भी तो पूरा फ़िलासफ़र था। सच मानिये आपके साथ उसका जब पहला इंट्रोडक्शन हुआ तो मुझे यही डर लगा कि आप भी दुनियाँ के बड़े फ़िलासफर हो जायेंगे। मैंने जब भी आपका मैंटल हास्पिटल देखा तो मेरी आँखें अनूप को ढूँढती रही हैं।"

सविता ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा— अच्छा बाबा ! बहस बन्द भी करो अब।

निर्मला ने क्षमा माँगते हुए डाक्टर साहब से कहानी सुनाने की प्रार्थना की।

डाक्टर साहब उठकर बेठ गये और खुशी के साथ कहानी सुनाने लगे—

अलीगढ़ विश्वविद्यालय। विक्टोरिया गेट की ओर से दो नवयुवतियाँ

अपने छोटे भाई के साथ चली आरही हैं। उन्हें देख कर स्ट्रैची हाल के सामने आकर स्नेह ठिठक गया।

क्या नाम जीजा जी ? स्नेही ?

नहीं भई ! स्नेह।

अच्छा फिर क्या हुआ ?

युवतियाँ स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ती जाती हैं। उनकी दृष्टि में कोई लक्ष्य है। इसलिए इधर उधर नहीं देख रहीं हैं। स्नेह भी उन के पीछे २ झाड़ियों की कतार में छुप कर देखता रहता है। वे ऊपर चढ़ जाती हैं और लग-भग आधे घण्टे के बाद अंग्रेज़ी विभाग के ज़ीने से नीचे उतर आती हैं। स्नेह धड़कते हृदय से सीढ़ियों पर चढ़ता है। विभाग का चपरासी बताता है कि अभी-अभी आगरे से आई हुई लड़की उसे पूछ रही थी। इतने में ही प्रोफेसर संजय अपने हाथ में बैग लिए हुए आते हैं। 'हैलो स्नेह' कहते हुए उसके निकट आ जाते हैं। विभाग का वही चपरासी दौड़ कर बैग ले लेता है और चिक उठाता है। वे दोनों कमरे में जाकर बैठ जाते हैं। चपरासी कागज़ की चिट प्रोफेसर के सामने रख देता है। धीरे धीरे फुसफुसाहट होती है।—

सरिता ! सरिता ?

हाँ भाई साहब ! स्नेह ने धीरे से कहा— सरिता अभी आधे घण्टे पहले आई थी।

सविता ने चौंकते हुए पूछा—क्या नाम ?

डाक्टर ने कहा-- सरिता ! क्यों ? क्या तुम्हारी कोई परिचित है ?

'हाँ मेरी सहेली थीं'— सविता ने उत्तर दिया।

निर्मला ने कहा— सविता नाम तो हज़ारों लड़कियों का होगा। इससे क्या ? और फिर यह तो कहानी ही है।

कहानी बढ़ती जाती है—

प्रोफेसर ने स्नेह से पूछा— 'क्या तुम ने खुद देखा था ?

'हाँ भाई साहब !'

'तो बिठाया क्यों नहीं?' साथ कौन था?
'सरला और छोटा भाई भी।'
'बड़े बेवकूफ हो। किधर गईं वे?'
'यूनियन हाल होती हुई साइंसम्यूज़ियम की तरफ।'

"अच्छा तुम जल्दी करो। साइकिल ले कर इस सड़क से चलो मैं उस सड़क की तरफ से जाता हूं। इञ्जीनियरिंग कालेज के पास मिलना।"

सितम्बर की चिलचिलाती हुई धूप। दो दीवाने धूल फाँक रहे थे। उन्होंने सारी यूनिवर्सिटी को छान मारा लेकिन वे नहीं मिलीं। थककर दोनों फिर अपने विभाग में आगये। चपरासी ने बताया कि वे दोनों फिर आई थीं और क़रीब दो घण्टे बैठी रहीं। प्रोफेसर ने सर पीट लिया। सोचने लगे कालेज के प्रिंसीपल शायद उनके रिश्तेदार हैं। उन्होंने स्नेह को साथ लिया और शाम के पाँच बजे पहुँच गये लेकिन मालूम हुआ कि चार बजे की बस से वे लौट गई हैं।

कैप्टिन माथुर ने कहानी का तार तोड़ते हुए कहा— अरे। ये दोनों तो सो भी गईं। डाक्टर ने शिकायत के लहज़े में कहा— "सविता की यही आदत है कि मुझे बकवास करते हुए छोड़ देती है और सो जाया करती है।"

उन्होंने दोनों को जगाते हुए कहानी शुरू रखी—

"सरिता ने दुबारा आकर चपरासी से पूछा और जब यह मालूम हुआ कि उनके आने की ख़बर पाकर भी संजय ने इन्तज़ार नहीं किया तो बड़ा क्रोध आया। फिर भी दो घण्टे क्रोध में बैठी हुई इंतज़ार करती रही लेकिन निराश होकर अन्त में लौटने का इरादा कर लिया। वह आज संजय से अपने भाग्य का निर्णय करना चाहती थी क्योंकि उसके पिता विवाह के लिए मजबूर कर रहे थे। इस सम्बन्ध में पत्र भी लिखा था लेकिन संजय ने आगरा जाकर ही इसके बारे में बात करना उचित समझा था। इसलिए जल्दी उत्तर नहीं दिया। वे एकदम हाँ कहकर सरिता को चमत्कृत करना चाहते थे। सरिता उतावली में उनके

पास आई थी। यहाँ आकर उसका यह संदेह पक्का होगया कि संजय जानबूझ कर उससे दूर भागना चाहते हैं। घर वापस जाकर पिता के प्रस्ताव को स्वीकृति दे दी। शादी की तैय्यारियाँ होने लगी। सरिता ने अपने अतीत को खुशी की बेहोशी में भुला दिया। सरला भी उस में योग दे रही थी। दोनों को रूमानी ख्याल झूठे मालूम होने लगे। एक हफ़्ते के बाद संजय सरिता से मिलने गये। कोठी के चारों तरफ बड़ी सफाई हो गई थी। इमली के पेड़ के नीचे कुछ नौकर कालीनों को पीट-पीट कर साफ कर रहे थे। लान में बच्चे खेल रहे थे। संजय ने कोठी के बरामदे में प्रवेश किया। टाइगर भौंकने लगा। बैल को बजाया। सरिता ने दरवाज़ा खोला और चौंक पड़ी। उसके शरीर पर पुती हुई हल्दी देखकर संजय ने विस्मित नेत्रों के साथ पूछा—

यह क्या सरित?

जो कुछ तुम्हें दिखाई देता है।

लेकिन......

लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। आप यहाँ से चले जाइए।

सुनो भी......

'अब कुछ नहीं सुनूँगी'— भर्राती आवाज़ में कहते हुए दरवाज़ा बन्द कर लिया।

संजय की आवाज़ 'सरिता' के नाम से कोठी में गूँज गई। नौकरों ने चौंक कर काम छोड़ दिया और जबरन संजय को धकेलते हुए कोठी के बाहर कर दिया। ज़ंजीर से बँधा हुआ टाइगर बड़े ज़ोर से भौंक रहा था।

यह क्या सरिता!— डाक्टर ने उसकी आँखों में आये हुए आँसुओं को देख कर पूछा

कुछ नहीं, यही कि ......बेचारा संजय... ...।

'हाँ बेचारा' भई! तुम तो बड़ी भावुक निकलीं। डाक्टर ने इतना कहते हुए कहानी को जारी रखा—

"मैंटल हास्पिटल रोड से आगे बढ़ते हुए सिकन्दरा का प्रसिद्ध मक़बरा है जहाँ मुगलेआज़म अकबर सुख की नींद सो रहे हैं। हर साल यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। शायद आगरा अपनी स्वप्न-नगरी के स्रष्टा का दर्शन करने व्याकुल हो जाता है। सुन्दर ऊँचा दरवाज़ा और भी गर्वोन्नत दिखाई देता है। हिन्दू मुस्लिम सभी उस महान सम्राट की याद में उमड़ते चले आते हैं। मक़बरे की मंज़िलों में उनकी श्रद्धा भर जाती है। एक युवक और उसकी पत्नी दोनों मक़बरे के मैदानवाले चबूतरे पर बैठे हुए हैं। बड़ी देर बैठने के बाद वे मक़बरे की सबसे ऊँची मंज़िल पर चढ़ जाते हैं। वे सुन्दर चिकने फर्श पर बैठे हुए थे कि इतने में ही एक फटे वस्त्रों वाला जिसकी दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी हुई थी ऐसा पुरुष उनकी तरफ आया। वह उसकी पत्नी को घूरने लगा। युवती ने एक रुपये फिर दो रुपये का नोट दिया। उसने नहीं लिया पर्स में से पाँच रुपये का नोट निकाल कर दिया। उसने ले लिया लेकिन नोट के कई टुकड़े किये और भयंकर अट्टहास करने लगा।"

कैप्टिन माथुर ने बीच ही में डॉ० साहब को रोक लिया—"क्या आप सचमुच कहानी सुना रहे हैं या अपनी तरफ से हमारी घटना को दुहरा रहे हैं? क्यों निर्मला यह तो वही घटना है। है न?

"हाँ, हाँ, बिल्कुल वही है।" लेकिन ताज्जुब है कि अनूप को यह कैसे मालूम हुआ?

डाक्टर ने खुश होते हुए पूछा—अब तो हुई मेरे कलाकार की कायल। कैप्टिन माथुर ने जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हुए पूछा—फिर क्या हुआ?

"लेकिन बात वहीं तक होती तो पति को क्रोध न आता। उस पागल ने नोट के टुकड़ों को युवती के मुँह पर दे मारा और फिर अट्टहास करने लगा। युवक को क्रोध आया और पूरे ज़ोर के साथ ऐसा चाँटा लगाया कि पागल ज़मीन पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

यही बात हुई थी; क्यों निर्मला? डाक्टर ने पूछा।

"हाँ जीजा जी। ये बड़े वैसे हैं। इन्हें उसके दुबले शरीर पर हमला करते हुए ज़रा भी तरस नहीं आया।"

मैं बड़ा शर्मिंदा हूँ, कैप्टिन ने कहा— फिर क्या हुआ?

"बादल छाये हुए थे। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। भीड़ सिकंदरा से आगे जमुना के घाट की ओर जा रही थी। युवक-युवती भी भीड़ के साथ चले जा रहे थे। रास्ते के दोनों ओर राजकीय बाग़ था। बबूलों की हरीतिमा में भी सौंदर्य होता है। पन्द्रह बीस मिनट में वे घाट पर पहुँच गये। शिवजी के बहुत से मन्दिर छोटे बड़े। फूलों से जमुना की धारा भरी हुई। मन्दिर फूलों से महक रहे थे। बड़ा रहस्यात्मक दृश्य था। युवक-युवती एक मन्दिर से दूसरे में जाते रहे। फिर जमुना के किनारे खड़े हुए दृश्य देखने लगे। जहाँ पर युवक खड़ा हुआ था यकायक करार टूट गया और पानी के आवेग के साथ युवक चढ़ती जमुना में गोते खाने लगा। युवती की चीख निकल पड़ी। 'बचाओ' 'बचाओ' की नाकाम आवाज़ गूँज रही थी, लेकिन बचाने के लिए प्राणों की बाज़ी लगाकर कूदने का साहस किसी ने नहीं किया। सहसा एक क्षीणकाय पुरुष कूद पड़ा। बड़ी तेज़ी के साथ बहता हुआ युवक के हाथ को पकड़ लिया। तिनके का सहारा पाकर युवक सम्हल गया। वह पार आ लगा। सभी लोग ताज्जुब कर रहे थे कि टी० बी० के इस मरीज़ में कहाँ से ताक़त आगई? युवक-युवती ने उसी पागल को कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखा। युवक उससे क्षमा माँगने लगा। पागल ने कुछ कहा नहीं और दृष्टि से ही क्षमा कर दिया।"

"जीजा जी वह पागल नहीं। जरूर कोई देवता है। वह उसी जगह एक टूटे मन्दिर में रहता है। जीजा जी! दर्शन करने चलेंगे उसके?

हाँ, ज़रूर! उस देवता के मैं भी दर्शन करूँगी— सविता ने कहा।

डाक्टर कहानी की घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध ढूँढ रहे थे। क्योंकि उन्हें सभी सूत्र बिखरे-बिखरे दिखाई दे रहे थे।

× × × × ×

आज चारों प्राणी उस देवता के दर्शन करने चल दिये। मार्ग बड़ा निर्जन था। बादलों के बीच में से सूरज सत्य की तरह चमक रहा था। बबूलों में भी एक अजीब सन्नाटा छाया था। वे घाट पर पहुँचे उन मन्दिरों में फूलों की महक नहीं थी क्योंकि पुजारी जाने की तैयारी कर रहा था। कई लोग झुंड बनाये हुए खड़े थे। एक व्यक्ति उस देवता को शिवजी का प्रसाद चढ़ा रहा था। आवाज़ धीमी निकल रही थी। डाक्टर चीख भरते हुए उस देवता से चिपट गये। निर्मला ने उसके चहरे पर गहरी नज़र गड़ा दी। वह उसके पास बैठी हुई थी। बढ़ी हुई दाढ़ी के बादलों के पार उसे कुछ क्या सब कुछ याद होता गया। देवता ने उसके सर पर हाथ रखते हुए क्षीण स्वर में कुछ कहने की कोशिश की। वर्णमाला के कुछ व्यंजन टूटी माला के फूलों की तरह बिखर गये।

म एँ न ...... तु म् म हा र् रे .... प ... र .. म .... कि ... दुनि... ... फाज़त ...... कु कु .. की .. ह् ह .. हे न ?

और फिर हमेशा के लिए मिट्टी के पुतले वाला देवता अदृश्य हो गया। मन्दिर खाली पड़ा था। निर्मला बेहोश होकर ज़मीन पर ढुलकने लगीं। केप्टिन ने उसको सम्हाल लिया। सविता अवाक् सारे दृश्य को देख रही थीं वह भी शायद अपने झूठ-सच वाले जीवन में खो गई थी। डाक्टर को आज अपने मित्र की अस्फुट वर्णमालिका में कुछ जीवन-सूत्र मिल गये थे। उन्हें अपनी स्टडी से एक बिल्कुल नवीन तथ्य की प्राप्ति हुई थी।

—:०:—

"वायिल-पुल"

डॉ० भूषणलाल कौल

"जुबेदा! ख्याल रखना, बेटी, रस्सी हाथ से छूट न जाये बेटी बस अब पहुंच ही गए। उधर अपने खेत के पास दोनों बैलों को बांध लों, मैं हल लेकर अभी आता हूँ।" यह कहकर मैं अपने खेती के बीचों-बीच तेज़ी से क़दम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ा। परन्तु...यह...यह...यह बूटों के निशान, रात को कोई यहाँ से चला है, पर यहाँ...तो कई बूटों के निशान हैं। तो, आ-गए-यहाँ भी। पर किसके पास, किसने पथ-प्रदर्शन किया? अहो, अब क्या होगा!

"बाबा—जल्दी आओ।" जुबेदा ने मुझे पुकारा और मैं हल कन्धे पर रखकर अन्यमनस्क अवस्था में बूटों के निशान बचाकर चला। अनवर हल जोतने लगा और जुबेदा पास ही खेत की मेंड़ पर खेलने लगी। मैं भी उसी के पास वायिल-पुल से तीन मील की दूरी पर पहाड़ी के दामन में, वोतशन् गाँव के एक खेत की मेंड़ पर विचारों की दुनिया में खो गया। अब क्या होगा...या अल्लाह..... अलक्षेश्वरी की इस पवित्र तपो भूमि की रक्षा करना, नहीं तो .... कबीरडार से एक घोड़ा लेकर वायिल चला जाऊँ और .....और ...ऐसी परेशान हालत में मैं कबीरडार के घर गया।

"अरे गुल्ला, तुम ... इस समय, भई खैरियत है?" "हाँ कबीरा सब ठीक है।"

"अरी जूनी ज़रा हुक्का तो लाओ, देखो गुल-टाठा आया है।" मैं कबीरडार के निकट बैठा। कबीरा मेरा परम मित्र था, मेरा समवयस्क, मेरे साथ आठ जमात पढ़ा है फिर मैंने गुप्तचर-विभाग में नौकर के लिए

अर्जी दी और कबिरा ने एक छोटी-सी दुकान वोतशन में ही खोल दी। कबिरा धीरे-धीरे पक्का व्यापारी बन गया और मैं......मैं केवल तीन फीते वाला हवलदार—बिना वर्दी के। मगर इस बात का कबिरा को कोई ज्ञान न था। गाँव में मैं बीमा एजेण्ट भी था। कबिरा के पास अब तीन घोड़े हैं और वे ही गाँव भर के काम आते हैं। दुकान पर कबिरा को न देखकर मैं उसके घर गया था।

"कबिरा, घोड़े कहाँ हैं?"

"यहीं......य...हीं......यहीं हैं।"

"कहाँ भाई ....."

"अरे वह सोनमर्ग की एक असामी आई थी, उसी ने......"

"अच्छा......" सर हिलाते हुए मैंने उत्तर दिया, इतने में ज़ूनी—जो कबिरडार की आठ वर्षीय एक मात्र पुत्री थी—एक हाथ में हुक्का और दूसरे हाथ में काँगड़ी लेकर आई। ज़ूनी और ज़ुबेदा आपस में सखियाँ थीं और दोनों प्रायः अलत्तेश्वरी के चश्मे पर, कबरिस्तान पर अखरोट के वृक्षों की छांव तले अथवा कहीं खेत की मेंड पर आपस में खेलती रहती थीं। मैने सोचा कि बात छेड़ दूँ पर न जाने क्यों चुप रह गया, कुछ समय तक इधर-उधर की बातें करने के पश्चात् मैं वायिल की ओर चल पड़ा। रास्ते में मैंने श्रीनगर जाने का निश्चय किया और इस प्रकार दो घण्टे के पश्चात् मैं सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के दफ्तर में पहुंचा। इत्तला दी, तुरन्त उन्होंने अन्दर बुलाया, जाते ही मैं तन कर खड़ा हो गया। 'साहब' मुझे विस्मय-चकित नेत्रों से देखने लगे—

"क्यों गुल्ला, क्या हाल है?"

"सर !......"

"हाँ......"

सर !......

"हाँ, हाँ, कहो क्या बात है—"

"सर, मुझे शक है कि घुस-पैठिए कल रात वोतशन पहुंच गए...... खेतों में कई आदमियों के बूटों के निशान दिखाई दे रहे हैं। ऐसा लगता है, कि कोई अजनबी गाँव में आये हैं। पगडंडी का रास्ता छोड़कर बीच खेतों में से.....और सर, यह सिगरेट का खाली डिब्बा।" जेब से मैंने निकालकर साहब की मेज़ पर रख दिया, "वही खेत में मिला।"

"यह ...यह तो यहाँ नहीं मिलता"......साहब सोच में पड़ गये।

इतने में टेलीफोन की घण्टी बजी, साहब दस मिनट किसी से बात करते रहे और चौंगा रखते ही मुझ से कहने लगे—

"देखो! समाचार मिला है कि आज ही रात में कुछ लोग घोड़ों पर 'मनीगाम' में बड़ी तेज़ी से जाते हुए देखे गये हैं। दुश्मन बाँडीपुर के ऊपर ही ऊपर पहाड़ी रास्ते से सोनामर्ग तक पहुंचने की कोशिश कर रहा है। सावधान रहने की ज़रूरत है, समझे!......अच्छा, तुम जाओ।"

मैंने तन कर 'सिल्यूट' मारा और कमरे से बाहिर निकल आया......

ज़ुबेदा के लिये कुछ बिस्कुट और ज़बेदा की माँ के लिये दवाई खरीद कर मैं पुनः बस में बैठ कर विचारों की दुनियाँ में खो गया। मनीगाम, वोतशन और वायिल के बीच में एक छोटा-सा गाँव है...... घोड़ों पर बड़ी तेज़ी से आते हुए......कबिरा घोड़ा कहाँ है? ...... सोनमर्ग की असामी......

नहीं, नहीं, मेरा दोस्त कबिरा, ऐसा नहीं हो सकता है, नहीं हो सकता। कबिरा, तुम, नहीं......नहीं।

"टिकट के पैसे" कहते हुये बस के कण्डक्टर ने मुझे टोका।

"हाँ भाई लो।"

मैं रात के नौ बजे घर पहुँचा। ज़ुबेदा की माँ मेरी प्रतीक्षा में थी। खाना खाने के बाद मैं अपने कमरे की खिड़की के पास बैठ कर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। दूर से वायल का पुल स्पष्ट दिखाई देता था। प्रकृति के इस स्वच्छन्द वातावरण में सिन्धु नदी मानो मोतियों का व्यापार कर रही थी। मैं मन्त्रमुग्धसा वायल की ओर देख रखा था कि......

......टप ....टप .....टटाप..... टटाप, अरे, यह घोड़ों की आवाज़ ... ।

कबिरडार के घोड़े आज नहीं आयेंगे। सोनमर्ग गये हैं। यह कौन .....घोड़े यहाँ। आवाज़ धीमी पड़ गई। कहाँ गए? ज़ुबेदा की माँ को इशारे से ही समझाते हुये मैं धीरे-धीरे घर से बाहर निकल पड़ा। अलखेश्वरी के चश्में से होता हुआ मैं डार के घर के निकट पहुंच गया।

डार के घोड़े नहीं थे। नहीं थे, मैं वापस जाऊंगा। मेरी साँस ज़ोर ज़ोर से चलने लगी, कंपनी छूटने लगी, पसीना आने लगा--'फ्रोह' 'फ्रोह' अकस्मात डार के आँगन से घोड़े के हिनहिनाने की आवाज़ आगई मानो मेरे ऊपर बिजली गिर गई.....मैं थरथरा उठा। अब क्या करूँ? अब मुझमें न आगे बढ़ने का साहस और न पीछे लौटने की शक्ति!

मेरी कमीज़ पसीने से तर हो गई। क़हक़हों की क्षीण ध्वनि हवा के साथ उड़कर मुझे और भयभीत कर रही थीं। मैं धीरे-धीरे चश्मे के पास झाड़ियों में छिप गया। अब मुझे कुछ-कुछ दिखाई देने लगा था। डार का आँगन......केवल एक घोड़ा।

इतने में ही डार के साथ एक आदमी उसके घर से निकल पड़ा। घोड़े की रास हाथ में लेकर पगडण्डी के रास्ते दोनों अलखेश्वरी के चश्में के पास रुक गये......

आवाज़ साफ सुनाई दे रही थी......

"खान साहब! मैं क्या करूँ, मुझसे यह नहीं हो सकता।"

"वल्लाह! क्या बात है, तुमसे क्यों नहीं होगा?......

हुँ! तुम मर्द है, बखुदा, मुर्दा लगता है। अरे डार का बच्चा. हम तुम्हारा बुरकुस निकाल देगा। अमारा बात मानो, बस यह देख लो, पुल पर कितना आदमी है और रात को पहरा कितना आदमी देता है।"

खान ने कुछ जेब से निकाल कर डार को देते हुए कहा......

"देखो! अम घर छोड़ा, बीवी छोड़ा, ओलाद छोड़ा .....सब कुछ छोड़ दिया। अपना मुल्क के लिये, अपना मज़हब के लिये। और तुम मुसलमान होकर .....डरता है, बुज़दिल। यह रूपया लो, अमने तुम्हारा घर से आटा और नमक लिया है। हाँ... तुम्हारा बच्ची के लिये अम यह ट्रांज़िस्टर लाया ....बखुदा, विलायती है, अम को एक मेम ने दिया, अम तुमको देता है, अपनी भतीजी को देता है।"

"पर.... पर खान साहब! घबराते हुए डार ने कहा, कैसे...... कै .....से......"

"ओ सुअर का बच्चा। तुम्हारा क्या ख्याल है? कितना आदमी होगा वहाँ, १०, २०, ३०, ४०, ५० अरे बेवकूफ! अम तो १०० आदमी सोनमर्ग में पड़ा है......"

"हाँ खान, ३० से ज्यादा नहीं होगा—"

"हीं......(हँसते हुये खान ने डार को थपकी देते हुए कहा) सुनो— कल शाम इंशाअल्ला अमला होगा, खान अपना इमतिहान वायिल-पुल पर देगा। रात १२ बजे। अमारा बीस आदमी आगे जाएगा। १० आदमी मनीगाम में रहेगा और तीस आदमी इधर से 'कवरिंग फायर' देगा। तुम को अमारा खाना बनाना होगा और रात को सब लोग तुम्हारा घर रहेगा। किसी को पता न चले। समझो, तुम्हारा बेटी अम को 'चाचा' बोलता है, अम उसको अपनी बतीजी मानता है। मगर धोका दिया तो, अम

उसको पकड़ कर टुकड़े २ करके अपने कुत्ते को खाने के लिये फेंक देगा।"

समझाते हुँए खान ने पुनः कुछ निकाल कर उसके हाथों में दे दिया। डार का डर भी अब कुछ दूर हो गया था। उसने खान से कहा—जूनी" मेरी इकलौती बच्ची है। जब से तुम आए, तुम्हें बहुत चाहती है, रोज़ मुझे पूछती है। कि चाचा कब आएँगे, कब अएँगे। पिछले चार महीने से तुम्हारे प्यार ने वल्लाह उसे निहाल कर दिया हैं।"

"ओ चुप कर! फजूल वखत ज़ाया मत कर. अम को बहुत दूर जाना है—मोन्मर्ग। अबी तुम देखना यह दुष्मन का बच्चा, काफिर, अम को यहां से भागना है।"

"ए-ले, देखा अपना बेटी को देना, जब वह पढ़ेगा। यह कलम है। ओ जानमर्गा, चीनी है, बोत कीमती, अभी जूनी को अमने कपड़ा भी दिया, वह अमरा बतीजी है।" हँसते हुए खान ने हल्का-सा घूँसा डार का पीठ पर दे मारा और इधर मेरे हृदय पर एक करारी-सी चोट पड़ी, साँस तेज़ चलने लगी थी, डर था कि कहीं खान ने देखा और बन्दूक की एक गोली से... ...

यही सोचकर मैं धीरे-धीरे साँस ले रहा था और उधर खान डार से पुनः कह रहा था—

"अम यह रुपया तुम को दिया, शाम का खाना वास्ते, अरे अम जशन मनायेगा। अम को गोशताबा खिलाओ। अम फिर लड़ेगा—ए बगा देगा इनको। फिर अमारा राज होगा। अमारा आदमी ओ इन काफिर के बच्चे को लूटेगा। इनका औरत को... तोफा देगा। शादी मनाएगा।"

पगड़ी को ठीक करते हुये खान ने डार से कहा और डार यूँ ही हाँ में हाँ मिला कर उसकी बातें सुन रहा था।

"अच्छा अम जाता है। पर खबरदार! कहीं कोई गलती किया, बेइमानी किया, मुरदार हो गया, ओ अम जलाके राख कर देगा। फिर खान का गुस्सा

बड़ा खतरनाक होता है। कल शाम अम आठ बजे आएगा। सारा गाँव घेर लेगा, खाना खाएगा और १२ बजे दुश्मन पर गोला फेंकेगा ओ बिजली गिरा देगा, खेतों में से छिप-छिप कर वायिल के पुल तक पहुंचेगा और फिर काफिर का बच्चे को पकड़ कर चींटी की तरह मसल देगा। अमारा आदमी साथ होगा, पुल को बम से उड़ा देगा। अब बोत देर हुआ, अम जाता है— (जाते हुए खान से पुनः लौटकर डार की गर्दन पकड़ कर कहा)— ओ जानमर्गा! सुनो! अगर कोई खबर होगा तो अमारे पास मोनमर्ग में आना। अम तुमको बहुत इनाम देगा, अच्छा'' 'अस्लाम-अलेइकुम' (कहते हुये खान घोड़े पर चढ़ गया और चल दिया) 'वालइकुम-अस्लाम' कहते हुए डार घर की ओर मुड़ गया।

मैंने मुँह का पसीना पोंछा और धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़ा। घर पहुंच कर एक सिग्रेट सुलगाई और बिस्तर में बैठकर भविष्य के कार्यक्रम सोचने लगा। घुसपैठियों का भयानक आक्रमण—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा। खान की योजना कल रात में कार्यान्वित होगी .....और मैं नं० ११६ हवालदार गुलमुहम्मद। अभी बैठा हूँ ....।

पहली गाड़ी वायिल से श्रीनगर ७ बजे जाती है और ...मैंने करवट बदल ली और सोने का प्रयत्न करने लगा।

× × × × × ×

१६ अगस्त प्रातः फोज ने वोतशन को घेर लिया था। १२ अगस्त की रात वायिल-पुल पर घुस-पैठियों का भयानक आक्रमण निष्फल हुआ था उनका एक आदमी वहीं पुल के पास खेत में मरा पड़ा था। दो और घायल हो गए थे, जिन्हें फोज ने वोतशन में पकड़ा था। मोनमर्ग में दुश्मन ने मोर्चा बनाया था। यह जगह वोतशन से ५-६ मील दूर है सेना एवं पुलिस मोनमर्ग की ओर 'अडवान्स' कर रही थी। इधर वोतशन गाँव की स्त्रियों एवं बच्चों को सुरक्षा के लिए वायिल पहुचने का प्रबन्ध किया जा रहा था। डार अपनी पुत्री एवं पत्नी सहित अन्य ग्राम वासियों के साथ वायिल की ओर चल पड़ा।

आई० जी० पी०, डी० आई० जी०, सी० आर० पी० के अफसर तथा सेनाधिकारी एवं सी० आई० डी० के 'साहब' मोके पर वायिल पहुंच गये थे और रात में हुए आक्रमण की रोमांचक कहानी सुन रहे थे। पुल के पास ही खेतों में पड़े दुश्मन के शव पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और मैं बड़ी फुर्ती के साथ अपने साहब सहित अधिकारी जनों को अपनी कहानी सुना रहा था। कबीरा का नाम मुझ से नहीं लिया गया, बचा गया। इतने में गाँव वाले पुल के पास पहुंच गये।

"अरे ...च......चा......चा......चाचा......चाचा, चीखते और चिल्लाते हुए अपना हाथ छुड़ा कर जूनी खेत में पड़े शव के साथ चिपट गई। चाचा तुझे क्या हुआ, अब मुझे मिठाई कौन देगा? अरे! तुम्हारी नाक से खून बह रहा है, मैं बाबा से कह दूँगी, दवाई लाएँगे, तुम अभी ठीक हो जाओगे, फिर मेरे लिये कपड़े लाओगे। ठहरो मैं अभी बाबा से कहती हूँ"— कहते हुए जूनी उठकर पीछे मुड़ी—

"बा......बा......बा.......बाबा।"

× × × × ×

आँखों में पट्टी बान्ध कर कबिर-डार को पुलिस के दो आदमी वायिल पुल के उस पार ले जा रहे थे। मैं ठगा-सा देख रहा था।

तीसरे मार्च की पूनमी शाम

प्रो० राम दत्त शर्मा

(१)

मेरे मन को आदत है
घढ़ने की रचनाएँ
यूँ बहुत बार मैंने सफर किए हैं
लेकिन
तीसरे मार्च की पूनमी शाम
एक अकेली है
कुछ कहने को
कुछ सहने को अनुभव
अलग सी अपरिवर्तित ।।

(२)

बस स्टैंड सत्तारह सेक्टर
चन्डीगढ़ सुबह
आठ बजे जब
एक टैक्सी से एक ग्लैमर गर्ल
उतरी थी
तब
मैंने अपने नसीब को कोसा था।
कि पीछे
कभी याद नहीं है
किसी अपरिचित लड़की का
सफर मिलाये
फिर तत्काल उस तक
दिल ले जाना अस्वाभाविक लगा
अनौपचारिक जंचा
लोग बसों की भाग-दौड़ में
उस ग्लेमर गर्ल को
निगल गए
और मैं तीसरी खिड़की पर
खड़ा रहा अठ्तीस सीट
के इन्तिज़ार में एक घण्टा
मेरे साथियों की पोशाकें
अजीब-अजीब गन्धें
फैला रहीं थीं
एक जाकेट से हींग
एक से जाफरान और एक से
निकल रही थी खुशबू
मछली की
दूसरे सज्जन पान की
महक लिए 'वाटिका'
पढ़ रहे थे
तीसरे हाथ में 'करन्ट' लिए
चुपके से छुपे-छुपे
अगली सीट पर बैठी

एक सुन्दरी के रूप को अपलक
निहार रहे थे
मैने उत्सुकतावश उस 'करन्टमेंन'
के केन्द्रबिन्दु को देखा
तो मुझे अपने बारे में कहे
उपरोक्त वाक्य झूठे लगे
मेरा अभाग्य मुझे पहली बार
लगा असत्य
ग्लेमर गर्ल ठीक अगली सीट पर
थी मेरे आगे
एक इंच की दूरी
पहाड़ था मेरे बीच

(३)

गोल चेहरा गोल गुलाबी लाल
होंठ सुनहरे
सुकुमार मांसल हाथ भरे भरे
नैन नीले नील गगन से
नुकीली भवें स्याह लम्बी
प्रश्न चिन्ह सी
पलकें सुनहरे पाउडर से रंगी
बॉब्ड़ बाल क्वले गले पर
लताओं से
धूलभरे मैले
अर्धनग्न माँसल पीठ
गेहुँआई अर्धचन्द्र सी
हाथों में काजाँ की
"एरेन्जमेंट"

जिसके मुख पृष्ठ पर छपी
एक नग्न स्त्री की लिटी
देह को बार बार
लड़की अपने हाथ से
छुपा लेती थी लज्जावश
जैसे उसी को किसी ने
नग्न करके लिटा दिया हो
और वह बेबस सी
आँख बन्द किए
सब दर्शकों की नजरों से
छुपना चाह रही हो ।।

(४)

हर स्टेशन पर जब भी बस
रुकी—मैंने चाहा—
वह बस से उतरे
परन्तु बारह घन्टे के सफर में
एक मिनट भी
वह लड़की
सीट पर से न उखड़ी
उसकी आँख 'काजाँ'
की किताब से पल भर भी
न हिली
वह अपनी थकी थकी देह को
कभी तिरछे कभी सीधे
कभी झुक कर
आराम दिलवाना चाहती थी
जब वह खिड़की की ओर झुकती

मैं उसकी सीट का हैंडल
अपने दोनों हाथों से पकड़ लेता
और अपना माथा अपने हाथों पर
रख देता ॥

(५)

उसकी हारी हारी नज़रें
बाहर के नज़ारों में खो जाती
दूर पहाड़ियों की बर्फ को देखकर
उसके चेहरे पर एक
कोमल सी मुस्कराहट खेलने लगती
मेरा एक अँगूठा बस की हिचकी पर
उसकी पीठ की माँसल
अर्धचन्द्रिका से मिल जाता
मेरे बाल उसके घुँघराले बालों से
प्यार करते रहते
उसे मालूम था मैं निकट होने का
अनुपयुक्त लाभ ले रहा हूँ
वह किताब पढ़ने लगती
हर पन्ना एक घुमन्तु की तरह
देखती
कहीं अच्छा वाक्य मिलता
तो पढ़ लेती
उसे कई बार एहसास हुआ होगा
मैं उसकी किताब के पन्ने
पढ़ रहा हूँ
वह रेगिस्तान में
भटके हुए 'एक्सप्लोरर' की तरह
कोई 'ओएसिज़' किताब में ढूँढती
और फिर एक विजेता की तरह
अपने बालों को झटका देती
जो मेरी गर्दन पर निर्दयता से
अपने सुकोमल न होने की
छाप लगा देते ।
जब भी मेरी हैंडल की पकड़ में से
आवारा हुई अंगुलियाँ
उसके नर्म नर्म कुँडलों में
सरकती तब वह सचेत हो
आहिस्ता से अपना सुरमई बदन
सरकाती
मेरी अंगुलियाँ फिर उसके कुँडलों की
सर्पिली गिरफ्त में स्वतन्त्र हो जाती
और वह पुन: बालों को एक
झटका देकर
किताब में व्यस्त होने का
स्वाँग रचाती ॥

(६)

जालन्धर शहर
और जाल अन्दर
पहुँच गए दो और जीव
बस का जाल
ग्लैमर लड़की का सम्मोहन
एक बुढ़िया एक लड़का जवान
बुढ़ापा और यौवन
के दो पाट एक दरया जीवन

एक कश्ती एक नाव-जिस्म
और धाराएँ लोक
लड़की के उकताए चेहरे पर
सावन भादों की काली बदली के
स्थान पर
डूबते सूर्य के वक्त
साँझवेला की स्वर्णिय आभा
चमकने लगी
लड़का एक निहायत ही कीमती
ब्लू पुलओवर पहने था
और उसके स्वस्थ हंसमुख चेहरे पर
प्राकृतिक चैतन्य और
गरिमा उद्दीप्त थी
अट्ठारह साल के लड़के ने
पच्चीस साल की लड़की
के नेत्रों में अपनत्व जताने की
चेष्टा को एक मीठी मुस्कान में
भर कर सारी बस के
वातावरण को सुगन्धित कर दिया।
वह बार बार लड़की की ओर
एक अपलक नज़र से देख कर
मुस्कान की एक मीठी डोज़
पिला देता।
मेरी हैंडल पर अकड़ी अँगुलियाँ
उस क्रिया से विचलित
और उद्विग्न होने लगीं
कौन ये 'विलेन' आ टपका ?
मेरी पतली ठन्डी अँगुलियों ने

एक बार एक और भारी गुनाह
करने का दुस्साहस कर लिया
मेरी नन्हीं अंगुली
उसकी अर्धचन्द्रित
माँसल पीठ पर
अपना नाम लिखाने लगी
उसने पीठ हटा कर
यूँ देखा जैसे किसी ने
पीछे से उसे चक्कू घोंप दिया हो
मैंने सिर हिला कर
मुस्कुराते कहा—
"आर. ... डी. ... "
"क्या मतलब ?"
"मेरा नाम"
"आप... !!"
उसने पहले कभी इन परिस्थितियों का
सामना न किया होगा
"आप" के बाद वह कुछ न बोल सकी
केवल झुंझलाकर उसने
एक झटका बालों को
और दिया
निर्झर से लहराते केश
मेरी आँखों से टकरा कर
पुनः मेरी अँगुलियों पर
फैल गए
अबकी बार
केशों की रगड़
मेरी अंगुलियों की चमड़ी पर

माखन की सी ठन्ड की जगह
जलती हुई तपन दे रही थी
उसने लड़के की मुस्कुराहटें
स्वीकारने का संकल्प
कर लिया था
उसकी गर्दन और हाथों की
माँसल गरिमा को
मैं उसके अदृष्य उरोजो
तक ले गया
मेरी आँखें कल्पित रूप से
उसके समूचे शरीर का
अनुसरण करने लगीं
सभी वह हिस्से जो
सुरक्षित रूप से आवरतित थे
उतने ही कठोर सुडौल स्तनों की
कल्पना मात्र मेरे हृदय की
धड़कनें दौड़ाने लगीं तेज़
उसके कटि तक जाती जाती
मेरी कल्पना लड़खड़ाने लगती
उसके बाद के स्वप्न
मेरी बन्द आँखें
मेरे मुंह की नमी को
चुराने लगे
भारी माँसल पट्ठे
सुडौल सुगठित पृष्ठ पिंड
और आपस में मिलतीं
पुष्ट मतस्याकार जांघें
जांघों के निलय के बीच
हृदय की तेज़ धड़कनों के
नामालूम राज़ ॥

(७)

मैं बाहर हरियाली से
अपने मुंह की शुष्कता
को पी जाना चाहता था
बस सतलज के पुल पर
से गुज़र रही थी
शुष्क रेत-जल-टीन
विस्तृत सतद्र-शरीर
बीच में नाड़ियों सी जल-रेखाएं
एक ओर सुर्ख सूर्य का टुकड़ा
दूसरी ओर स्याह पूरा चाँद
मैं सूर्य सा तप रहा था
वह स्याह पूरे चाँद सी उद्‌दप्त थी
सौंदर्य की गरिमा से प्रस्फुरित
गुलाब-कलि सी
अपनत्व स्वीकारने के लिए विचलित
लड़की के उद्दीप्त चेहरे पर
बिषाद की धुधलकी बदलियाँ
सी घिरने लगीं
वह कभी हाथों से बाल संवारती
कभी अपना हैंडबैग देखती
सामने पूर्व के क्षितिज पर
चाँद के ऊपर धुंधले बादल की
चादर सरकने लगी
दूर "साम्बा" कस्बे तक जाती

कच्ची ऊंची सड़क पर
ऊंटों की क़तार
और पार
दो ऊंटों के 'हम्पस'
की मनसा देवी की पहाड़ी
और उससे भी दूर
काली काली पहाड़ियों के
माथों पर
माखनी बर्फ की चादरें
और बर्फ के ऊपर
ऊंचे उचके उरोजों में
निकलतीं स्तन शिराएं
लड़की एकदम 'इरेक्ट'
होकर बैठ गई
उसके उभरे स्तनों के
"सिलहाउट्स" मनसा देवी के
दो ऊंटों के 'हम्पस' सदृश
ऊर्ध्व थे ॥

(८)

जम्बू शहर के तवी पुल से
पूरे श्वेत चाँद ने जी भर कर
मुझे देखा
लड़की के गोरे हाथ ने
अपनी कलाई पर से
खद्दर का बाजू सरकाया
चान्द के ठन्डे प्रकाश में
चमका—
"लल्लेश्वरी"
भगदड़ी भीड़
काश्मीरी मैले कुचेले कुलियों
की आवाज़ें
लड़के की अन्तिम मुस्कराहटों
के दौर
"लल्ली लल्ली.."
की कोमल कम्पित पुकारें
"आऽऽ...शीऽऽऽ .." के वापिसी
हर्षित घोष
आनन्दित उठ रहा माँसल
लल्लेश्वरी बदन
मैं गठियाया चाँद सा
तप रहा था मौन
चन्डीगढ़ की भुवनेश्वरी
और जम्बू की लल्लेश्वरी
में बहुत अन्तर था
कुंआरा रह गया चन्डीगढ़
और अनब्याहा 'जम्बू'
लड़का भी उठा
ऐसा हुआ
शायद ऐसा ही होता होगा
और कुंआरी लल्ली
बिदा हो गई बिन देखे
भुवन का कुंआरा पन
उसका शौक है
उसकी 'क्वालीफीकेशन' है एक
इसीलिए चन्डीगढ़ में

करोनिक 'स्पिनस्टरज'
यूनीवर्सिटी में बहुत हैं
लेकिन लल्ली कुंआरी
नहीं रह सकती
यह इतने अचूक सौंदर्य
का अपमान है
काश्मीर की कुंआरी कलि
रश्क की महक परी
गीतों की आत्मा सी

सुन्दरी 'लल्ली'
जा चुकी थी
उसकी कलाई का गोरा
मुख चमका
मेरी आँखों में
उसके बदन की
खुशबू
फिर ताजा हो गई
मेरी साँसों में ।।

बन्दरों का शहर

डॉ० जवाहरलाल हण्डू

यह शहर बहुत ही दिलचस्प है। वैसे हर शहर दिलचस्प होता है, परन्तु यहाँ की बात कुछ और है। यहाँ की हर वस्तु आकर्षक है, जंगली हरियाली की तरह, जो स्वयं उगती है, स्वयं आकर्षक बन जाती है, दिलचस्प बन जाती है।

एक शहर एक छोटी पहाड़ी की तलहटी में बसा है, जिस के दामन को छूता हुआ एक अच्छा खासा, विशाल दरिया बहता है। दरिया के बिल्कुल किनारे से लिपटी हुई विस्तृत भूमि पर बड़े बड़े कारखाने हैं। जिन में अधिक लकड़ी के हैं। शहर का सब से बड़ा लकड़ी का कारखाना भी यहीं है। इस सारे उद्योगी क्षेत्र का नाम 'लाला इन्डस्ट्रियल स्टेट' है। कहते हैं पहले इस सम्पूर्ण स्थान का नाम 'कच्ची बस्ती' था। यहां बस्तियां थीं। लोग थे और बन्दर भी। लोग झुंगियों में रहते थे। खेती करते थे। भैंसें चराते थे। दूध बेचते थे। कपड़े धोते थे। जूते चमकाते थे। बाल काटते थे। कपड़े चुराते थे। कपड़े फाड़ते थे। और भाग जाते थे लाल पूंछ हिलाते हिलाते। परन्तु आज ......आज यहां लक्ड़ी के लट्ठों के चीरने की चीखें और धुयें के उछलते बादलों के सिवाय और कुछ नहीं। कहीं घोड़े की टाप नहीं, बन्दर की आवाज़ नहीं। मशीनों की खटखटाहट; गाड़ियों का अटूट हिलता हुआ कारवां और ...और शायद कुछ भी नहीं यहां। जहां भी नज़र दौड़ायें फौलाद के दीवार नज़र आते हैं। और कई हिलते हुए कई स्थिर।

पहाड़ी तलहटी में रात की डरावनी अन्धयारी को गोद में लिये, मासूम शिशु की तरह नीरवता में सोया हुआ होता है यह शहर।

परन्तु यह नीरवता में भी इसका स्पन्दन सुनाई पड़ता है। ठीक उस विशाल, अथाह समुद्र की भांति, जो ऊपर से शान्त, सोया हुआ लगता है, परन्तु जिसके अन्तर में, गर्भ में, रव चलते हैं, हल-चल होती है, संघर्ष रहता है।

इस शहर की प्रकृति जितनी मानव के लिए उदार रही है उतनी ही यहां के बन्दर के लिये भी। मतलब यह भी, यहां इन्सान के अतिरिक्त बन्दर भी हैं। और भी दूसरे पशु-पक्षी हैं, परन्तु बन्दर यहां के इतने हसीन हैं, इतने बड़े हैं; इतने सजीव हैं इतने 'कल्चर्ड' हैं कि एक दम मानव लगते हैं। देखने वाला भ्रम में पड़ता है कि वे इन्सान देख रहा है या बन्दर और भ्रम शायद तब तक दूर न होता हो जब तक बन्दर मुड़ कर अपनी पूंछ दिखा के साबित न करे कि मैं......।

यहां के बन्दरों की प्रकृति सजीव है यहां के मानव की तरह। कहते हैं यहां के 'टोलू' (यहाँ की बोली में यही शब्द प्रचलित है बन्दर के लिये) बेईमान हैं, रिश्वत खाते हैं। कई कहानियां इन 'टोलुओं' की बेईमानी और रिश्वतखोरी के सम्बन्ध में हैं। जैसे एक 'टोलू' किसी नवजात बच्चे को उठा ले गया। बच्चा इन्सान का था। कुत्ता-धोती आदि जैसे वस्तुओं को लौटाने के लिये एक आध फुलका-पूरी काफी हुआ करता है। लोगों ने कनक के कई फुलके पटक दिए परन्तु 'टोलू' महाशय उन्हें चट करने पर भी टस से मस न हुए, तिस पर ऊपर से बच्चे को गिरा देने का दिखावा भी करने लगे। कुछ समय की निरन्तर कशमकश और शोर:गुल के बाद कहीं से सेर भर चने उठा लाया और पटक दिये हज़रत 'टोलू' के आगे तब आके कहीं उसने बच्चे को कोठे मर छोड़ दिया। कोठा ढलवान न था नहीं तो आसमान से गिरे खजूर पर लटके वाली बात होती। सब इतमीनान की सांस लेने लगे और मान गये कि बढ़ती महंगाई और रिश्वतखोरी के साथ 'टोलुओं' का 'रेंट' भी बढ़ गया है।

क्या ज़माना आया। कुर्ता-धोती उठा लेना तो इनका स्वभाव था।

ही परन्तु बन्दर का बच्चा इन्सान को उठा ले भागे हे भगवान् यह तो बिल्कुल नया करतब है कितना मोटा है साला, निडर है। चन्ने न मिलने पर शायद गिरा ही देता।

इस शहर के बसाने की कई कहानियां प्रचलित हैं। कई इसका बसना जंगल में मंगल समझते हैं। कई पुराने टाइप के आदमी यहां की पवित्रता और शहर का बसना एक ही सूत्र में बांध लेते हैं। परन्तु आम विश्वास यह है कि शहर किसी हारे हुए राजा ने बसाया है। युद्ध में तो वह हार गया था परन्तु शहर बसाने में जीता। ऐसा भी कहा जाता है कि रणभूमि से हार कर यहां के बीरान बीहड़ जंगलों में भटकता फिरता दरिया के किनारे तक आ पहुंचा था। प्यास बुझाने के लिये। यहां का पानी इसे बहुत अच्छा लगा। पानी ही नहीं यहां की सभ्यता बहुत अच्छी लगी। यहां के पशुओं का 'कल्चर' उनकी शांतिप्रियता, उसे और अधिक भायी। शेर और बकरी को एक घाट पानी पीते सुना था। उसने यहां आंखों से देखा। तृप्त हुई उसकी आंखें और शुद्ध हुई उसकी हारी हुई आत्मा। राजा शाँतिप्रिय था इसलिये शहर बसाने का हुकुम हुआ—शहर बस गया।

आज भी इस शहर के दामन को छूता हुआ दरिया प्रवाहमान है। दरिया वही है पानी वही है, लेकिन रुख कई बदल गये। कहीं किनारा कट गया है, कहीं किनारा बन गया है। 'लेबल' कहीं उपर उठी है और कहीं नीचे झुकी है। और ऊपर लकड़ी के पुल का स्थान एक मज़बूत फौलादी पुल ने लिया है। फौलादी पुल के निर्माण के लिये अंग्रेज़ इन्जीनियर विलायत से विशेष तौर पर मंगवाया गया था। आज भी पुल के माथे पर शहर बसाने वाले राजा के वंश की मोहर और बनाने वाले अंग्रेज़ का नाम अंकित है।

बसाने वाले राजा से लेकर आज तक कई युग बीत गये और उनके साथ यह हसीन शहर भी। आज यहां बड़ी बड़ी ऊंची इमारतें।

आधुनिक इमारतें। विशेषकर यहां के बाज़ारों में कई तिमंज़िले चौमंज़िले मकानों की बाह्य साज-सज्जा इतनी आकर्षक एवं मनोहर है कि हर देखने वाले की आंखें चौंधया जाती हैं।

'रेज़ीडेन्सी रोड' इस शहर का सबसे बड़ा आधुनिक ढंग का बाज़ार है। यहां कई चीज़ें खरीदी जातीं हैं कई बेची जातीं हैं। एक अनोखा बाज़ार है यह। इस बाज़ार के ठीक मध्य में, चौराहे पर, उत्तम सेनमा के ठीक सीध में, पुलिस वाले के 'मीट' से थोड़ा हट कर कास्मो होटल है। इस होटल की पूरी इमारत शानदार है। सारे बाज़ार की रोनक़ को बढ़ाने वाली इमारत। इसका सारा भाग लगभग कांच का है, जिस पर रंगों की साज सजा से चाय, काफी के सुन्दर विज्ञापन तथा विभिन्त आधुनिक डिज़ाइन इस तरह काढ़े गये हैं कि शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जिस की आंखें एकाएक उस ओर आकर्षित न होती हों। रात में रंगीन तथा चौंधिया देने वाली रोशनियों से जगमगाता यह होटल ठीक नुकरे के सब्ज़ी वाले की दुकान में रखा हुआ टमाटरों का छज्जा सा लगता है, जिस में कई अर्ध-लाल, लाल और कई बिल्कुल ही लाल रंग के छोटे-बड़े टमाटर बड़ी चतुराई से सजा के रखे हुए होते हैं। जब दिन ढलता है, सूर्य डूब जाता है, रात की अंधियारी छा जाती है तो 'कास्मो' की सुबह शुरू होती है।

रात के ठीक दस बज रहे थे। दीवार पर टंगी क्लाक ने मानो अपनी ऊंची ध्वनि से 'कास्मो' की हसीन सुबह का उद्घाटन किया हो। होटल का हाल चमकती रोशनी से जगमगा रहा था। लोग छोटी-मोटी टोलियों में आ रहे थे। धीरे-धीरे हाल की रौनक बढ़ती ही जा रही थी। अधिक भीड़ तो 'बार' के 'कावंटर' पर जमी थी, जहां कई लोग ऊंचे स्टूलों पर बैठे, आंखें झुकाये और आधी गर्दन लटकाये और कई खड़े खड़े कमर पर हाथ धरे, पैग पै पैग ले रहे थे। हाल के एक कोने से किसी अंग्रेज़ी फिलम के गाने की मद्धिम धुन निरन्तर चालू थी जिस के साथ साथ खड़े आदमियों के

पैर अनजाने में ही हिल-मिल रहे थे। एक अजीब समां बंधा हुआ था। कई स्त्रियां भीड़ से हट कर, हाल के एक छोर में अपने आदमियों के साथ काफी की चुस्कियां ले रही थीं। मद्धिम रोशनी के कारण उनके चहरे पर दिखाई नहीं देते। फिर भी बीच बीच में हलके कहकहे सुनाई पड़ने के कारण सभी पुरुषों की गर्दन उनकी ओर अनायास ही मुड़ जाती। सहसा शराब के 'कावंटर' के सामने खड़े सभी आदमियों की दृष्टि द्वार की ओर मुड़ी। एक अधेड़ आयु का स्वस्थ, मासल, सांवले रंग का आदमी हाल के अन्दर मस्ती में, बाँग देने वाले पांच किलो मुर्गे की भांति इठलाता हुआ अन्दर आया और सीधा 'बार' कावंटर के आगे जा झुका। उसकी दृष्टि इधर-उधर चंचलता से घूमी। ऐसा लगता कि सभी खड़े पुरुष इससे परिचित हैं जिनमें से कई तो एक दम बायें हाथ में गिलास थाम के आगन्तुक से हाथ मिलाने के लिये कावंटर से थोड़ा हट गये।

हेल्लो इन्जीनियर! कैसे हैं आप! "आज इतनी देर क्यों!" इन्जीनियर साहब अपनी घड़ी देखने लगे और अपने दोनों मोटे मोटे होंठ मिलाते हुए बोले—

"हां देर तो हुई। चलो देर से आये दुरूस्त आये, परन्तु आये जरूर।" सारे लोग एक ठहाके से हंस दिये। इतने में हाल के एक कोने से लाला दीनानाथ अपनी धोती का आँचल जेब में दबाये हाथी की चाल से इठलाते हुए; अपने बन्दर की पूँछ के रंग वाले चहरे पर कृत्रिम हंसी लाते हुए इन्जीनियर मलहोत्रा से हाथ मिलाने आगे बढ़े। लाला जी क़दम नापते आ रहे थे। ज्यादा पी ली थी, उन्होंने बीच-बीच में सहारे के लिए कुर्सी या मेज़ पर हाथ धरते। उनकी आंखें तर हुई थीं और रंग भी रक्त सा हो गया था। जैसे आंख की कोई नाजुक नस फट चुकी हो और सारा रक्त उतर आया हो आंखों में। इन्जीनियर मलहोत्रा से बोलते समय उनकी बात बीच बीच में टूट जाती जैसे बहुत थका हुआ कारवां बीच बीच में टूट जाता है। अपनी

अंगुली को कान में घुसेड़ते हुए वे बोले।

"भले ही लोगों के लिये आप इन्जीनियर हों परन्तु हमारे लिए तो आप भगवान हैं। आप तो सृष्टि के इन्जीनियर हैं।"

"रहने भी दीजिये लाला जी। हम तो जनता के दास हैं।"

"और मैं आप का दास।" लाला दीनानाथ एक लम्बी हिचकी लेते हुए बोले।

"मलहोत्रा साहब।" लाला जी अपनी अधखुली आंखों से अन्दर की ओर इशारा करते हुए बोले "अगर अन्दर चल के बैठा जाये तो कोई आपत्ति ......।"

"नही! नहीं! आप ने तो मेरे मन की बात कही।" चलते-चलते लाला जी का हाथ मलहोत्रा के कन्धे पर अनजाने में ही आ टिका। कावंटर की ओर एक जानी-पहचानी दृष्टि डालते हुए दोनों अन्दर 'केबिन' की ओर बढ़े। 'केबिन' में शराब का दरिया बहने लगा जिस में गोते पै गोता लगा रहे ये दोनों। बैरा जब कभी 'केबिन' का द्वार खोलता तो केबल धुयें की मोटी मोटी परतें झटके से बाहिर आती।

"तो इसका मतलब है दिन-प्रति आप का रेट बढ़ता ही जाता है?" लाला दीनानाथ एक लम्बा बासी डकार लेते हुए बोले।

"लाला जी आप अनुमान नहीं लगा सकते कि कितना कठिन कार्य है यह।" मलहोत्रा साहब ने सिगरेट लगाई और सामने की दीवार पर टंगी बन्दर की हसीन तस्वीर इस तरह देखने लगे कि जैसे आलीशान इमारत के बन जाने पर उस में छिपी अपनी ही कला को एक इन्जीनियर अफसर देखा करता है।

"मानता हूँ काम कठिन है परन्तु शर्त भी तो कठिन ही है।"

"इस बस्ती के लोगों को आप नहीं जानते हैं लाला जी। बिल्कुल बन्दर हैं। उनसे बात करने जाओ तो साले झपट पड़ते है। नाम से तो बस्ती काँपती है परन्तु जड़ें बहुत पक्की हैं।

और ऐसे बेहूदा जड़ों को उखाड़ फेंकना इन्जीनियर का काम।"

भई इन्जीनियर क्या करे। इन्जीनियर कोई बुलडोज़र है क्या?"

"बुलडोज़र नहीं। बुलडोज़र का चालक अवश्य है।"

"उससे क्या होता है। कोई एक झुगी नही। उठा के फेंक दूं। हज़ारों हैं। कई एकड़ जमीन पर दूर दूर तक फैली हुई बस्तियां हैं। हैवानों की बस्तियां.........आप ही बतायें क्या किया जाये।"

लाला जी कुछ नही बोले केवल अपनी अंगुली से कान खुरचने लगे। वे मलहोत्रा से ही सब कुछ सुनना चाहते थे। इसीलिये मौन थे। कई क्षण वातावरण में खामोशी छाई। फिर इन्जीनियर मलहोत्रा बड़ी गम्भीर आवाज़ में मुंह से धुआँ उन्डैलते हुए बोले:—

अब एक ही रास्ता है.........।

"कौन सा रास्ता?"

"पहले मेरा काम।"

"आप का काम! वह तो हो ही जायगा इन्जीनियर साहब। आप नहीं जानते कि कितनी मेहनत और सर दर्द के बाद मुझे "कन्ट्रेक्ट" मिला है: लकड़ी का कारखाना सिवाय इस जगह के और कहीं नहीं चल सकता। दरिया का किनारा बहुत आवश्यक है। और वह 'साइट' तो बेजोड़ है। लग-भग एक करोड़ का ठेका है। यह

पी० डब्लू० डी० का ठेका नहीं। लकड़ी का काम खतरनाक होता है।"

"तो ठीक है एक लाख मेरा काट दो कारखाना बन जायेगा। ज्यादा नहीं है। कई खून करने पड़ेंगे। कई घर........।"

"तो रेट में कुछ कमी नहीं। अच्छा मन्जूर है। लेकिन याद रखो मलहोत्रा, काम न बन पाया तो कहीं तुम्हारा ही........।"

मलहोत्रा के होठों पर लालाजी की इस अधूरी बात से एक हल्की मुस्कान अनायास ही छा गई! वह लालाजी को वेधड़की से ताकने लगे मानो लालाजी की बात आधी थी, बेहूदा थी जिसका प्रभाव मलहोत्रा जैसे योग्य इन्जीनियर पर प्रायः नहीं पड़ता।

लाला जी ने गिलास की अंतिम बूंद को गले के नीचे डालते हुए पच्चास हज़ार का एक 'चेक' मलहोत्रा के आगे किया।

"पच्चास हज़ार पेशगी। बाकी काम के बाद।" लाला की आँखों में विजय की चमक थी और मलहोत्रा के चहरे पर दायित्व की प्रसन्नता मिश्रित खिन्नता।"

जब वे तीनों 'केबिन' से बाहिर आये तो रात के ठीक बारह बज रहे थे। सारे हाल में सिगरेट के नैलानी आंचल पंखों की तेज़ हवा से वातावरण में विलीन होते जा रहे थे। होटल की रौनक में अब भी कोई अन्तर न आया था। संगीत की धुन अब पहले से अधिक तीव्रता से चल रही थी। मंच के सामने एक आध हिन्दुस्तानी जोड़े अङ्ग्रेज़ी तरज़ का नृत्य भी कर रहे थे। सहसा नाच बन्द हुआ और इन्जीनियर मलहोत्रा ने सिगरेट होठों के बीच दाब के दोनो हाथों से ज़ोर की ताली बजाई। सारा हाल गूंज उठा। थोड़ी देर में ही इन्जीनियर तथा लाला द्वार की ओर बढ़े और कई क्षणों में इन्जन की

हल की गड़गड़ाहट के साथ ही कार चल दी और साथ में इन्जीनियर मलहोत्रा और लाला दीनानाथ भी। दोनों के चले जाने पर, न जाने क्यों होटल में नीरवता सी छा गई लेकिन 'केबिन' की दीवार पर लटका हुआ हसीन बन्दर अपने लम्बे लम्बे दांत निकाले हँस रहा था।

कई महीने गुज़र गये। कच्ची बस्ती की झुंगियों में रौनक़ आई। कई नई झुंगियां बन गई। बरसात का मौसम बीत जाने पर सारी 'बस्ती' की दुनियां में अजीब परिवर्तन आया। बाग़ बगीचें सजने लगे। हरियाली अधिक आकर्षक होने लगी सारी 'कच्ची बस्ती' हरियाली में लिपटी पक्की दिखने लगी।

तभी एक रात, एक हसीन रात, तारों भरी रात चाँदनी रात ... एक ज़बरदस्त धमाका हुआ। बाँध टूटा पानी भूखे शेर की तरह अन्दर दौड़ा। 'कच्ची बस्ती' बह गई। इन्सान बह गये। बन्दर बह गये और बह गई बस्ती की सारी हरियाली। बचा रहा अंग्रेज़ का बनाया हुआ पुल और उसके माथे पर लगी मुहरें। कई अधमरे बन्दर रेंगते हुए इस प्रकोप से बचते पेड़ों से लिपट गये। शायद वे सभी बन्दर ज्यादा 'कल्चर्ड' थे, जभी तो अस्तित्व की इतनी चिन्ता थी उन्हें। और इनके ऐसे प्रयासों पर, चांद हंस रहा था, तारे हंस रहे थे।

अखबार में खबर आई बांध के मरम्मत का काम इन्जीनियर मलहोत्रा को सौंपा गया है।

दूसरे दिन सुना गया कि मरम्मत के काम का दो लाख का ठेका शहर के प्रसिद्ध ठेकेदार लाला दीनानाथ को दिया गया।

आज भी उस टूटे हुए बांध की पुरी हुई दरार के चिन्ह स्पष्ट दीख पड़ते है। दरिया वही है। उसकी चाल वही है। परन्तु 'कच्ची बस्ती' नहीं है और न ही 'कच्ची बस्ती' में रहने वाले 'बन्दर'। हाँ

कारखाने हैं। लकड़ी के कारखाने। बहुत ही बड़े कारखाने। मीलों तक फैले कारखाने।

शहर की चाल में कोई अन्तर नहीं। स्पन्दन वही है बल्कि पहले से भी अधिक तेज़। बाज़ारों में रौनक में कोई कमी नहीं। होटल अब भी सर ऊंचा उठाये 'रेज़िडेन्सी रोड़' की पूरी बाज़ार की ओर एक टक देखता है। इस की जगमगाती रोशनियों में अब भी वही चौंध है। सारा शहर जिन्दा है।

सुना है लाला की मिल बनते समय मज़दूरों को खुदाई करते करते इन्सानों की कई अस्थिपंजर मिले थे। और.........और लोग कहते हैं बन्दरों के भी।

चुमो

—मनोहर भट्ट

.........“ऐसी आंधी न कभी चली थी और न कभी चलेगी गुम्पे के मुख्य द्वार पर फहरने वाली महाकाल की ध्वजा आज तक कभी भी इस तरह से कट कर नहीं गिरी थी, और न कभी सकुषक के बनाये अष्ट-चिन्ह पर इस कदर धूल जम गई थी। आज की आंधी निसन्देह भयंकर है इस आंधी ने संभवतः सारे स्तोक को उखड़ने का निश्चय किया है”............ इतनी सी बात सोचकर मैं उस टीले से उतरी थी कि सहसा मेरे गुरु लामा मुझे बुलाने लगे. मैं देख चुकी थी कि ‘स्तोक’ के हर मकान की ध्वजाएँ कट गई थीं. छतों पर रखा पशुओं के लिये घास तिनकों में सारे मरुस्थल में फैल गया था। इसी बीच मेरे गुरु लामा मुझे बुलाने लगे। एक योग्य शिष्य की भान्ति लद्दाखी सत्कार के अनुसार मैं ने उन को प्रणाम किया तत्काल उन की गम्भीर वाणी गूँज उठी, “पद्मा, तुम जानती हो तुम्हारा भाई “टेशी नमग्यल” कल रात्रि से बीमार है। “माठो” के चिकित्सक ने उस का रोग भयंकर बताया है. और आज वह ‘लरज़े’ चिकित्सक के लिये नहीं जा सकेगा, क्योंकि स्तोक के मरन-स्थल में जैसे स्वयं महाकाल उधम मचा रहा है” !

× × × ×

............वर्षों के त्याग के बाद भी मेरे स्नेह स्रोत उमड पड़ा मर्यादा और संघ के नियमों की परवाह किये बिना ही मैं गुम्पे से घर लौट आई थी। आंधी का वेग तब भी मुझे रोक न सका

था। मैं जब घर पहुँची, तो लोगों की बड़ी भीड़ जमा थी, गाँव का मुखिया होने के नाते मेरे पिता को सांत्वना देने के लिये बहुत से लोग जमा थे। मैं ने किसी की परवाह न की थी, और तेज़ी से भागती भाई 'नमग्यल' के कमरे में पहुंची। वहाँ उस की साँस बड़े वेग से चल रही थी........उस के अधखुले नेत्रों से नीरवता का सा आभास हो रहा था.. ....वह धीरे धीरे कराह रहा था ....मैं आतुर हो खिड़की की ओर गई थी मरुस्थल के दूसरे छोर पर आंधी के सिवा कुछ भी नहीं सूझता था। तो भी न जाने क्यों मुझे विश्वास सा हो गया था कि चिकित्सक अवश्य आयेग.......पर न आंधी रुकी न ही चिकित्सक आया।

निराशा के अन्धिकार से घबरा कर मनुष्य देव मन्दिर में आशा की किरण ढूँडता है। ....इसी तरह मैं ने पद्मा सभा की दिव्य प्रतिमा के आगे नत-मस्तक होकर कितनी पोथियाँ पढ़ीं, गुरु पद्मा सभा तथा 'चिमो' देवी और 'आवलेकेश्वर' की मैं ने कितनी बार ग्यारह के ग्यारह सिरों की विधि पूर्वक पूजा की पर उस की दो सहस्त्र भुजाएँ 'नमग्यात्त' की मृत्यु न टल सकी। सदैव की तरह गुम्पे के भाग सूने रहे और देव प्रतिमा की आँखें खुली रहीं। मेरे घर से शुभ समाचार ले कर कोई सन्देश-वाहक न आया।

आंधी इसी वेग से चल रही थी ......बिल्कुल इसी तरह से ढेरों रेत एक स्थान से उड़ कर सारे वातावरण में फैल जाती थी। पद्मा नदी से कुछ ही दूरी पर खड़ी थी मानों वह काल से होड़ लेना चाहती थी। .. ..इसी के बाद जब नमग्यल की मृत्यु हुई, मेरा स्वप्न टूटा, मुझे लगा कि इतनी आयु मैं ने व्यर्थ चुमो के चोले में गवाँ डाली है। उस दिन से मैं ने उस पीले चोले का त्याग किया, और वापस घर आकर माठो के प्रसिद्ध 'लरज़े' से चिकित्सा पढ़ने लगी। शिक्षा देते समय कितनी बार "लरज़े उण्ढोल" ने कहा था. तुम्हारा नया प्रभात आने वाला है, और वही प्रभात छः वर्ष

पश्चात् आया जब मुझे सारी बरादरी ने पूरी परीक्षा के पश्चात 'लरज़े' माना था ।

.........पर आज भी आंधी इसी वेग से बढ़ रही थी इस तरह नदी के उस पार जाना अपने मृत्यु को निमंत्रण देना था । पद्मा को मृत्यु का कोई डर न था वह चुमो बन कर अपने जीवन को निरुद्देश्य गंवाने के बजाय एक लर्ज़े के रूप में निष्काम कर्म में विश्वास रखकर विध्वंस और निर्माण के संघर्ष में पिस जाना ही श्रेस्कर मानती थी ।

.........पद्मा ने अपने घोड़े को वापस भेज दिया और आत्म-विश्वास पर नदी पार कर गई । उस पार "शेय" का गाँव था । जहाँ लद्दाख के निम्नवर्ग की एक नर्तकी "अङ्गमा" पत्थराई आंखों से उस की राह देख रही थी ।

जिस दिशा से आज तक केवल रेत और मिट्टी उछली थी उस ओर से अपने वस्त्र समेट जल्दी से पद्मा अंगमो के पास आई ।

रक्षा

—पूनी परिहार

रत्न चूल्हे की लकड़ियां आगे करते हुये बोला, 'मां, मैं कल शहर क्यों न जाऊँ ?'

'क्यों शहर क्या करना है ?'

कुछ दिन मज़दूरी कर लूंगा मां। आखिर इस पैसे से आशा का विवाह थोड़े ही होगा। मज़दूरी से जो थोड़ा बहुत पैसा और बनेगा, कुछ चीज़ें खरीद लूंगा, साथ ही वस्त्र तथा गहने आदि बनवा लेंगे।

पूर्णा कुछ कहना ही चाहती थी कि रत्न फिर बोल उठा 'मां मैं नहीं चाहता कि आशा के विवाह में कोई कसर रह जाये। आखिर मेरी यही तो एक बहन है। मैं ने कब रोज़ रोज़ किसी की खुशियां करनी हैं। अपनी आशा का विवाह भी आम गाँवों की शादियों जैसा हुआ तो फिर क्या किया'।

'छोड़ो रत्न, यह हवा महल न बनाया करो। मैं कहती हूं जैसे कैसे निभ जाता तो अच्छा था।' पूर्णा कुछ झुँझला कर बोली।

'ठीक है मां, परन्तु जानती हो नम्बरदार जी कैसे आदमी हैं और फिर पुत्र भी तो कुछ कम नहीं। नौकर है नौकर ——।' रत्न अपने अन्तिम शब्दों पर ज़ोर देता हुआ बोला।

आशा कमरे में प्रवेश करते करते शायद यह शब्द सुन गई, इस लिये कुछ लज्जाती हुई एक ओर को झेंप कर बैठ गई। कुछ देर यूं ही चुप चाप बैठे बैठे दिन भर की थकान रत्न की आखों में नीन्द बन कर छाने लगी इस लिये वह अंगड़ाई ले कर सोने के लिये उठा और सपनों के संसार में पहुंच गया।

प्रातः सूर्योदय से पहले ही रत्न चल पड़ा । शहर तक पंद्राह-सोलह मील का रास्ता पहाड़ी और ऊबड़ खाबड़ था जिस पर रत्न माथे से टपकते हुये पसीने की बूंदें छोड़ता जा रहा था। शहर पहुंचते ही रत्न अपनी चादर एक धर्मशाला में रख कर धन्धे की तलाश में बाहर निकला ही था कि एक आदमी ने बुला लिया और तीन रुपया दिन की मज़दूरी पर लकड़ी चीरने का कार्य बताया जिसे रत्न ने सहर्ष स्वीकार किया ।

दिन भर अधिक परिश्रम करने के पश्चात् शाम को रत्न स्टेशन पर यात्रियों का बोझ उठाने जा पहुंचा ! रात्रि के दस बजे तक वह वहां से भी दो तीन रुपये ले जाता और फिर प्रातः चार ही बजे जाग कर उस के कान किसी 'कुली' शब्द सुनने के लिये उत्सुक हो जाते । इधर से भी आठ आने रुपया भर कमा लेता । इस प्रकार वह एक दिन में पांच छः रुपये कमा लेता । भूख प्यास तो उसे जैसे लगती ही नहीं । जब देखो बस एक ही धुन में चला जाता । उस के सन्मुख हर समय आशा, आशा का विवाह, एक नयी धूम-धाम जो गांव में कभी नहीं हुई हो, रहती । वह नम्बरदार को यह दिखाना चाहता था कि रत्न एक मज़दूर हुआ था तो क्या हुआ। अपनी बहन के लिये तो वह सब कुछ कर सकता है जो एक गांव का नम्बरदार अपने पुत्र के लिये शायद ही कर सकता हो । इसी विचार से वह दिन रात एक करके परिश्रम कर रहा था हाथों में छाले पड़ गये थे, बिखरे हुये खुश्क बालों में धूल जैसे बर्फ की तह जम गई थी । दिवानों की तरह अपने आप से बेखबर वह केवल पसीना पूंछता और बस——अपनी धुन में मग्न रहता ।

मज़दूरी करने के साथ-साथ वह आवश्यक - विवाह - वस्तुयें भी खरीदता जा रहा था । कुछ वस्त्र तथा गहने भी बनवा लिये थे । अब वह इन वस्तुओं को कुछ दिन पहले ही घर भेजने का विचार कर रहा था कि उसे अपना एक घनिष्ट मित्र तथा पड़ोसी 'नोवत राम'

मिल गया। इस लिये वह इन चीज़ों को एक कपड़े में बांध कर नोबत के हवाले करने लगा कि उसे ख्याल आया और वह चौंक कर बोला 'ओह मैं तो सिन्धूर की डिबिया तथा टीका आदि गठड़ी में डालना ही भूल गया—यह लो यार, यह रही डिबिया इसे भी इसी में डाल दो।

'अच्छा यार तुम कब आओ गे' नोबत ने गठड़ी बांधते हुये पूछा, 'मैं? मैं तो सप्ताह बाद ही आऊंगा' रत्न ने उत्तर दिया।

'अच्छा तो फिर मुझे देर हो रही है' नोबत ने आज्ञा चाही।

'हां हां, तुम चलो। नमस्ते।'

रत्न ने नोबत को विदा किया और स्वयं भी लकड़ियां चीरने चल दिया। दिन भर कड़कती धूप में कुल्हाड़ा चलाते चलाते उसे अंग अंग में दर्द का अनुभव हो रहा था। परन्तु शायद स्टेशन पर से चार आठ आने और बन जावें इस विचार से वह शाम होते ही कन्धे पर कुल्हाड़ा रख कर उधर को निकल पड़ा। स्टेशन पर लगी भीड़ को चीरता हुआ रत्न एक गाड़ी के डिब्बे के निकट खड़ा हो गया। उतरते चढ़ते यात्रियों के अतिरिक्त उस की दृष्टि गाड़ी से उतरते बोझ की ओर भी लगी हुई थीं कि एक बाबू ने एक ट्रंक की ओर इशारा करते हुये पूछा—'उठाओ गे?'

'हां बाबू जी' रत्न ट्रंक की ओर बढ़ता हुआ बोला।

'क्या लोगे?' बाबू जी फिर बोले।

'कहां ले जाना है बाबू जी?' रत्न ने नम्रता से पूछा

'धर्मशाला में'। रत्न ट्रंक का वज़न करता हुआ बोला—' बड़ा भारी है बाबू जी एक रुपया दे दीजिये'!

'एक रुपया? साला——दो क़दम जाना है और एक रुपया चाहिये इसे——' बाबू कुछ रोब जमाते हुये बोला। रत्न के कानों में

जैसे लोहे की गर्म सलाई चुभ गई, उस के होंठ फड़फड़ाये, खून खोल उठा, हाथ कुल्हाड़े के दस्ते पर जम गये और वह सीधा खड़ा हो गया और बोला——' बाबू जी, ज़रा तमीज़ से बात करें, वरन्——" रत्न की आंखें गुस्से से लाल हो गईं।

'वरन् क्या करेगा तू——' बाबू आगे बढ़ गया

रत्न बहन का अपमान सहन न कर सका। उस की आंखों में अन्धेरा छा गया। और कुल्हाड़ा चल पड़ा! दूसरे ही क्षण बाबू जी भूमि पर तड़प रहे थे। शोर मच गया। रत्न भीड़ के बीच घिरा हुआ हांप रहा था। उस को आंखों में लाल पीले अन्धेरों के पर्दे पड़ गये थे जैसे उस के हाथों से सिन्धूर की डिबिया छूट कर बिखर गई हो। चारों ओर से 'पकड़ो पकड़ो' की ध्वनि गूंजी और रत्न उसी क्षण हथकड़ियों से जकड़ लिया गया।

× × × ×

उधर पूर्णा ने कमरे में पांव रखा ही था कि वह एक पल के लिये रुक गई। आशा दरवाज़े की ओर पीठ किये कुछ हाथ में लिये रो रही थी। आहट सुन कर उसने आंसू छुपाने की कोशिश की परन्तु पूर्णा ताड़ गई, इस लिये वह पूछ बैठी 'अरे, तुम रो रही हो? ——आशा क्या बात है, बताओ——बताओ न'? आशा चुप थी।

'अच्छा यह तुम्हारे हाथ में क्या है ज़रा दिखाओ तो सही।' पूर्णा ने आगे देखा तो——वहां रक्षा थी।

'अरे आज रक्षा बन्धन है?'
'हां माँ, भैय्या को भेजूंगी।'

'क्या भेज रही हो भय्या को।' नाबत भीतर प्रवेश करते ही बोला।

पूर्णा स्वागत करते हुये बोली—'आओ नोबत, तुम शायद शहर से आ रहे हो ?'

'जी, यह रत्न ने कुछ चीज़ें भेजी हैं, स्वयं एक सप्ताह तक आ जायेगा।

पूर्णा वहीं गठड़ी खोल कर देखने लगी, आशा भी बैठ गई और नोबत भी।

पूर्णा गहने देखने लगी, आशा ने सिन्धूर की डिबिया उठा ली—और उन के कान बाहर को लग गये। बाहर कोई कह रहा था—

——'रोशन', रोशन यार, सुना तुम ने नम्बरदार——नम्बरदार का पुत्र——'कोई हांपते हुये बोल रहा था——' उसे रत्न ने कुल्हाड़ा मार दिया, उसे क़त्ल कर दिया —।

पूर्णा बैठी की बैठी रह गई—आशा के हाथ से सिन्धूर की डिबिया नीचे आ गिरी——वह धड़ाम से गिर गई' ——रत्ना हाथ में थामे।

प्रतीक्षा का अन्त

—मनमोहन

'मैं क्या दूंगी संजू तुम्हें क्या दूंगी, मेरे पास है क्या। —उफ' शोभना कराह कर रह गईं। सम्भवतः वह बेहोश हो गई थी, उसके बन्द नेत्रों से पानी बह रहा था, अधर कांप रहे थे, गर्दन एक ओर को लुढ़क गई थी। कम से कम दस मिनट उस की यही दशा रही होगी। इतने में किसी के जाने की आहट हुई।

'माँ'

'संजू'

'माँ'। वह चारपाई पर बैठ गया, 'उठो माँ'।

'उठती हूं बेटा' शोभना उठने के प्रयास में फिर धड़ाम से सिरहाने पर गिर गई।

'माँ' वह मां को सम्भालते हुये चीखा।

'उफ' शोभना ने करवट बदलना चाही।

'तुम दवाई क्यों नहीं खाती मां', उसे यह कहते हुये सामने मेज़ पर पड़ा नुस्खा उठा लिया और कहता गया,' लाओ पैसे मैं तुम्हें दवाई ला दूं। कब तक यूं ही लेटी रहो गी। देखो मेरे हाथों को, रोटियां बना बना कर बर्तन मांज मांज कर इन्हें क्या हो गया है। दो पैसे; मैं अभी दवाई लाता हूँ——दो माँ, दो। संजू ने शीघ्रता से कहते हुये शोभना के मस्तक पर हाथ रख दिया।

'पैसे——?'

'हां माँ, देखो तुम दवाई बिना कितनी कमज़ोर हो गई हो'।

'संजू' ! शोभना की जलातुर आंखें अब कुछ खुलीं। वह बोली, 'आज तुम जाओ — पास हो कर आओ ——' वह रुक रुक कर कह रही थी—— 'तो मैं स्वयं ही ठीक हो जाऊंगी ——''

'अह, स्वयं ही ठीक हो जाओगी'

"हां बेटा। फिर कपड़े सी कर पैसे एकत्रित करूंगी, तुम्हें ....." वह बोलते हुये थकावट अनुभव कर रही थी——' तुम्हें नई कक्षा के लिये पुस्तकें ले दूंगी— उफ— अपने लिये दवाई मंगवाऊंगी बाज़ार से— फिर मुझे खिलाओ गे ना दवाई तुम ?"

"नहीं मां, दवाई आज ही प्रयोग करनी है।" संजू कुछ यूं बोला जैसे शोभना की इतनी बातों को उसने सुना ही नहीं। अतः अब वह ज़िद पर ही उतर आया। "लाओ पैसे"।

मगर बेटा——'

'अगर मगर कुछ नहीं मां, दो मुझे पैसे।"

"मगर संजू आज पैसे लाऊं कहां से—" उसका गला रुंध गया।

"मां" संजू न जाने क्या कहना चाहता था परन्तु कह न सका।

"जाओ बेटा, पाठशाला देर हो जायेगी। आज तुम्हारा परीक्षा-फल भी है ना" शोभना यूं कह रही थी जैसे संजू को टाल रही हो" सफल हो कर आना - हां"।

संजू कुछ देर बैठा और फिर खड़ा हो गया। उसे पाठशाला जाना था अपना परिणाम सुनने। आज वह आठवीं कक्षा में जाने वाला था। अतः वह चल पड़ा। संजू दरवाज़े से बाहिर हुआ ही था कि रुक गया, उसे शोभना ने पुकारा——

"संजू बेटा, इधर आओ, अपने लाल को चूम लूं। उत्तीर्ण ही कर जाना।" वह लौटा और शोभना ने उसे स्नेह-वश हो चूम लिया और वह हंसते हुये कुछ विचारते हुये वहां से विदा हुआ।

शोभना लगभग दो सप्ताह से बीमार थी, उसे शायद टाइफायड

था। उसकी सिलाई मशीन पड़ी की पड़ी रह गई थी। तीस चालीस रुपये जो कुछ दिनों में उसने बचाये थे वह इन दो सप्ताहों में समाप्त थे। घर में खाद्य सामग्री भी लगभग समाप्त ही थी। दवाई प्रारम्भ में शोभना ने थोड़ी बहुत खाई थी मगर अब दवाई की बोतलें भी खाली थीं——उस गांव के छोटे से सरकारी चिकित्सालय में वह 'पेटेंट' औषधियां कहां थीं कि वह लाती या इतने इन्जेक्शन कहां थे वहां कि उस अबला को मिलते। उधर संजू भी काफी योग्य था, अतः उत्तीर्ण होना था। और आगे पढ़ाई के लिये उसे नगर के विद्यालय में प्रवेश करना था। क्योंकि उस क्षेत्र के तीनों विद्यालय सातवीं तक ही थे। उसके लिये भी पुस्तकें खरीदना थीं, उसे गणवेश भी चाहिये थी, शुल्क भी अत्यावश्यक था। यह स्थिति थी आज इस घर की। शायद इन्हीं चिन्ताओं के तूफान में घिरे शोभना लेटी रही और संजू पाठशाला की ओर हो लिया। संजू अभी घर से कुछ ही दूर गया था कि एक नेत्रहीन वृद्ध व्यक्ति रास्ते में बैठा कुछ रुपये गिन रहा था।

"मां"

संजू रुक गया, उसका दिल बल्लियों उछलने लगा, आंखें तिलमिला उठीं, क़दम उठ गये उस अन्धे की ओर——ऊँगलियां कांपने लगीं——वह बढ़ा। अब अन्धा उसके समीप था। अधरों पर मुस्कान आई ही थी कि उड़ गयी', उसके हाथ रुक गये बेजान हो गये——वह मुड़ा। पाठशाला की ओर चलता बना।

जब पाठशाला में पहुंचा तो छट्टी श्रेणी का परीक्षा-फल घोषित किया जा रहा था। उस क्षेत्र के तीनों स्कूलों के विद्यार्थियों का परीक्षा-फल उसी पाठशाला में सुनाया जा रहा था। अतः यह स्वभाविक था कि स्पर्धा की भावना प्रत्येक विद्यार्थी के मन में जाग उठी थी कि किस पाठशाला का कौन विद्यार्थी प्रथम आता है। लगभग तीन सौ छात्र उस विशाल कक्षा में उपस्थित थे, अतिरिक्त उनके अन्य गांव वाले। अब छट्टी के तीनों स्कूलों के विद्यार्थियों का परिणाम घोषित किया जा चुका था। होते होते सातवीं कक्षा का परिणाम सुनाया जाने

लगा। जब संजू कुमार (संजू) का नाम आया तो परिणाम सुनाने वाले अध्यापक रुक गये। छात्र रह गये, संजू सहम गया——

"खड़े हो जाओ संजू"

संजू खड़ा हो गया लाल पीला मुख लिये। अध्यापक जी कहने लगे——

"——इस वर्ष संजे कुमार इस प्रतियोगिता में प्रथम आया है, संजू को सब से अधिक नम्बर मिले हैं। हम सब इसको उज्जवल भविष्य के लिये आशीर्वाद देते हैं"। तालियों से कक्ष गूँज उठा, कुल वातावरण प्रसन्नता जनक हो गया। कुछ अध्यापकों ने पांच पांच रुपये तथा मुख्याध्यापक ने दस रुपये का नोट निकाल कर उसे यह कहते हुये पुरस्कार में दिये "लो बेटा, पुस्तकें खरीदना, मिठाई खाना"। होते होते परिणाम का अन्त हो गया।

संजू प्रसन्नता के इस सागर में न बह सका और उसकी आंखें जलातुर हो गई। उसने इसी दशा में अध्यापकों को प्रणाम किया, मित्रों से हाथ मिलाये और वहां से इसे प्रकार भाग निकला जैसे कोई पागल हो।

वह सीधा पन्सारी की दुकान पर पहुंचा, जेब से वही पुराना नुस्खा निकाला जो उस ने शोभना से बातें करते समय उठाया था, - - मां के लिये दवाइयां खरीदीं और खुशी खुशी घर की ओर चल पड़ा अपनी मां को जो उसकी प्रतीक्षा में ही होगी' सुसमाचार सुनाने।

'मां, मैं पास हो गया हूं, मैं प्रथम आया हूं। देख, मैं तेरे लिये क्या लाया हूँ। जानती हो कहां से लाया, ओ माँ मुझे पुरस्कार मिला। मुझे नयी पुस्तकें ख़रीदने के लिये पैसे दिये गये और मैं ने तुम्हारे लिये दवाई लाई। अब तुम दवाई खाया करो—जब मुझ से खुद रोटी नहीं पकती। ठीक हो जाओ तो मुझे पुस्तकें ले देना माँ——देखो

कितनी क़ीमती दवाइयां हैं मां, आठ रुपये दिये हैं इस बोतल के। अब मैं नगर जाऊंगा पढ़ने के लिये——वहां से घर आऊं तो कौन खाना खिलायेगा अगर तुम इसी हालत में रही——,"।

इसी कल्पना-विश्व में भटकता हुआ घर की ओर जा रहा था कि उसे किसी की आवाज़ ने चौंका दिया—

"बाबू,——" संजू मुड़ा और देखा कि एक लड़का एक 'अन्धे' का हाथ थामे आ रहा है उसकी ओर किताबों का एक बण्डल लिये हुये——।

'लो बाबा, यह है संजू, शोभना का पुत्र" उस लड़के ने संजू के समीप उस 'अन्धे वृद्ध' को लाते हुये कहा।

'बाबू, यह ले पुस्तक विक्रेता राधाकृष्ण ने पुस्तकें दी हैं और यह बिल और यह उसने जेब से पैसे निकालते हुये कहा, 'एक रुपया चार आने वापिस"।

संजू ने पुस्तकें ले लीं। चार आने 'अन्धे' को दिये और वह अन्धा 'नमस्ते' कहता हुआ चल पड़ा। संजू तब तक वहीं खड़ा रहा जब तक वह नेत्रहीन बूढ़ा उसकी नजरों से ओझल न हो गया। अब संजू ने बिल देखा, शोभना के नाम का, २४ रुपये ७५ पैसे का और जेब में धर लिया। अब उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने दवाइयां और पुस्तकें खुशी खुशी दोनों हाथों में सम्भाले रखीं और कुछ अधिक तेज़ी से चलता रहा।

चलता चलता वह अपने टूटे हुये मकान के समीप आ गया, वह आंगन में पहुंच गया।

"माँ" उसने बाहिर से ही आवाज़ दी शोभना को, अपनी माँ को। वह कहता गया "——माँ मैं पास हो गया हूँ और वह पुस्तकें

तथा दवाइयां उस टूटे से मेज़ पर रखता हुआ पूर्ववत शोभना की चारपाई पर बैठते ही मां को पुकारने लगा—

'मां'

'उठो मां'

'मां' उसके नयनों से अश्रुओं की धार बह निकली——

'मां तुम्हारा संजू सफल हो गया है मां'

'मां'

मगर वहां क्या था केवल 'प्रतीक्षा का अन्त'

मां अपने सुपुत्र का खिला चेहरा देखे बिना ही उस से कहीं दूर जा बसी थी——

'बादल छंट गये'

—सुदेश आनन्द

आज इस खिड़की के दोनों पट खोल देने से तो उदासी ने मेरे ऊपर आक्रमण ही कर दिया है। यह बर्फ से ढकी चोटियां उनके ऊपर मटमैले गाड़े बादलों की छतरी ताने आकाश मुझे और भी तो उदास कर देते हैं।

इन बादलों के नीचे आकाश है। जो स्वच्छ एवं नीला है फिर यह बादल क्यों नहीं चले जाते। उफ उनको तो दोनों हाथों से भी नहीं अलग किया जा सकता।

नहीं नहीं मैं इस बाहिर भीतर के कोहरे से घबरा गई हूँ। कभी न फटने वाले, कभी न हिलने वाले बादल भी मेरे दुश्मन बन बैठे हैं।

आखिर मैंने कहाँ पर गलती की ही। मैंने चाहा है कि वह पांच फुट का युवक मेरे जीवन में अपना अस्तित्व ही बना बैठे।

क्या मैंने उसे प्रेम किया है? नहीं नहीं यह प्रेम होता क्या है मैंने तो कभी नहीं जाना।

कौन सी चीज़ उस में है जो मुझे पागल बना दे क्या उसकी शरबती आँखों में दिखने वाले गुलाबी डोरे। अरे यह तो भावनाओं और वासनाओं का मिला जुला रंग है जो प्रयत्न करने पर किन्हीं भी आँखों में देखा जा सकता है।

फिर उसकी विद्वता? नहीं, दुनियाँ में वही अकेला पुरुष मैंने नहीं देखा!

फिर क्या मेरे हृदय की अपनी ही कमज़ोरी।

यह भी तो नहीं। फिर उसी के नाम की रट ही क्यों!

उफ भगवान यह-क्यों ? इस से मुझे बचा ले।

न यह बाहिर के बादल फटेंगे और न मेरे हृदय की 'क्यों' ही मिटेगी

उस 'क्यों' से बच जाने पर शायद मैं अपना रास्ता भी पालूँगी

रोहित—और रोहित का ख्याल दोनों ही मेरे लिये प्रश्न चिन्ह बन गये हैं।

कैसा अद्भुत है यह रोहित मेरे न चाहते हुए भी मुझ से हर वह काम रखा लेता है जो उसकी इच्छानुकूल हो, और मैं कर भी खुशी से देती हूं।

अरी बेटा रोहणी ! आई माँ।

बस इन्हीं दो छोटे से वाक्यों के पश्चात मैं रोहित के करीब पहुंच जाती हूँ। माँ के पास ही तो आकर बैठता है वह माँ उसे कितना पसन्द करती है।

उन्हें होगा। चलो आज राधा को लेकर पिक्चर ही देख आऊँ।

झट से रोहणी ने साड़ी बदल डाली और राधा के कमरे में पहुंच गई। फिर एक बार रोहित कौंध गया उसके मस्तिष्क में और सोच बैठी इस मरी राधा ने भी प्यार रोहित से ही करना था जाने क्यों मुझे हमेशा ही ऐसा लगता है कि यह रोहित कों मुझ से भी अधिक प्यार करती है। मैं इस धक्के को सह जाऊँगी किन्तु यह मरी तो कभी न सम्बल पायेगी। फूल सी तो है।

जाने कौन उसके अन्तर से बोल उठता है

दुनियाँ में त्याग का ज़िम्मा तू ने ही लिया है। बस विवशता से सोच कर रह गई वह अपने स्वार्थ के लिए अपना स्वभाव नहीं बदल सकती थी। मजबूर थी उसका स्वार्थ अकेलेपन में ही अंकुरित होता पनपता और आकार ग्रहण कर लेता किन्तु राधा और रोहित के

सामने उसका स्वभाव उस पर हावी हो जाता। वह अपनी चाहत को भूल जाती, अपने हृदय की कसक को भूल जाती और ढेर सारी उदासी बटोर कर घर लौट आती और फिर वही काश्मीरी सर्दी से ठिठुरे हुये भटमले कभी न हिलने वाले बादल होते और उसके अपने अन्तर का कोहरा होता। न यह बाहिर के बादल घुल रहे थे और न उसकी आँखें ही दो बूँद बरसा पाती थी। इस सूखे से वह जल रही थी निरन्तर सब कुछ भूल कर राधा से बोली।

चलो राधा पिक्चर देख आयें।

अरी रोहणी तूँ है चल रोहित को भी लेते हैं।

जैसी तेरी मर्ज़ी रोहणी के मुख पर वही चिर परिचित सौम्य एवं शान्त मुस्कराहट थी।

दोनों रोहित के घर पहुँच गई। और रोहित साहब ने झट से टैनिस खेलने का निमन्त्रण दे डाला।

रोहणी कुछ बोलती इस के पहले ही राधा ने स्वीकार भी कर लिया। राधा इस दुनियाँ की वस्तु थी और अपने को materialistic कहती थी। रोहित को चाहती है। बस इतना ही तो। रोहित उसकी ज़िन्दगी के साथ जुड़ जाये यह ख्याल उसे कभी नहीं आया था जो चीज़ लाई ले ली आकर्षण समाप्त! उस वस्तु को प्राप्त कर लेने की उस में प्रतिभा भी थी और कला भी।

रोहित राधा के सामने निरुपाय हो जाता है। वह उसी में खो जाता। रोहणी के अस्तित्व को भी भुला बैठता। परन्तु राधा की अनुपस्थिति में उसे रोहणी का शान्त सौम्य मुखड़ा कुछ सोचने को विवश कर देता वह ख्यालों में ही रोहणी की आँखें में, रोहणी के मुखड़े की शान्त सौम्य मुस्कराहट में कुछ ढूँढ़ने का प्रयत्न करता रहता, किन्तु विवश सा कहीं न टिक पाता, उसे रोहणी के हृदय मन्थन का बिलकुल पता न चलता।

राधा का नशा पूरी मादकता से उस पर चढ़ता किन्तु यह दूसरी शान्त सौम्य मुस्कराहट उसे कुछ सोचने को विवश कर देती।

और अब रोहित राधा के माध्यम से रोहणी को जानना चाहता है, समझना चाहता, मगर उस मुखड़े पर तो सिवा मुस्कान के या हल्की सी खिलखिलाहट के कुछ भी तो नहीं दिखता।

राधा ने झट से टैनिस का रेकट उठा लिया और टेबिल के गिर्द हो गई किन्तु रोहणी पास कुर्सी खींच कर बैठते हुए बोली तुम खेलो मैं देखूँगी।

रोहित बोल उठा रोहणी जी आप हमेशा द्रष्टा ही क्यों बनी रहती है कभी खेल में उतर आईये ना तैरने का मज़ा जो तैराक जानता है उसे तमाशबीन क्या समझेगा।

रोहणी के मुख से एक ही करुण वाक्य निकला।

नहीं रोहित मैं इस खेल को कठिन नहीं बनाना चाहती।

उल्लसित हो गया रोहित उसके रहस्यभय वाक्य का रहस्यमय उत्तर मिल गया था, उसे उस स्थान का पता चल गया था जहाँ वह अपने कदम टिका सकता था।

झट से बोल उठा तो सुनो रोहणी तुम और राधा Sinagles में खेल लो मैं उतनी देर Sigar धूएँ में से तुम्हारा खेल देखूंगा।

वाह रोहिण यह कैसे हो सकता है आप एक Game मेरे साथ खेल लीजिए फिर मैं ने अपनी एक सहेली से मिलने जाना है।

तो क्यों न यह खेल का प्रोग्राम ही कैन्सिल कर दे आज तो रोहणी से एक गाना ही सुन लिया जाये। राधा please अब तुम कोई objection नहीं करना।

चलो मन्जूर राधा चहल उठी किन्तु रोहणी तैयार तो हो।

तो यह भी तुम्हारा काम है अपनी सहेली पर तुम्हारा इतना भी अधिकार नहीं कि उसे गाने के लिए तैयार कर सको।

यह लो राधा चुटकी बजा कर बोली और झट से रोहणी के करीब जाकर अधिकार पूर्ण आवाज़ में उसे गाने के लिए कहने लगी।

भीत हिरणी सी रोहणी ने अपनी पलकें उठाईं, जिनसे हाँ झलक रही थी उसके हाथ पियानो पर थिरकने लगे और उसके हृदय का क्रन्दन फूठ उठा।

राधा इस करुण गीत को न सुन सकी उदास सी उस के पास जा कर उसे रोक दिया।

किन्तु रोहित उल्लसित था उसने इस क्रन्दन को बाहिर निकालने के लिए ही तो रोहणी से गाने का आग्रह किया था।

उसकी आँखें किसी सोच में गुम थीं उसका हृदय कह रहा था कितनी अद्भुत है यह रोहणी इसके अन्दर डूब कर तो निकलने का कोई रास्ता नहीं।

रोहणी की आँखों से उदासी के बादल छंट चुके थे बाहर आकाश पर मार्च की धूप चिलमिला रहीं थी।

राधा ने वापिस घर आने की ज़िद की

रोहित बोला चलो मैं छोड़ आऊँ राधा को उसके घर उतार कर रोहित रोहणी को लेकर उसकी माँ से मिलने चला आया। माँ घर पर नहीं थी रोहणी रोहित को लेकर अपने कमरे में चली आई सामने खिड़की खुली थी. बर्फ से ढकी सफेद चोटियों पर धूप चिलमिला रही थी।

"प्रस्तर-प्रतिमा"

—कौशल्या चल्लू

तीन दिन से वर्षा थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। हमारे आंगन में बादाम के पेड़ से पुष्प-पल्लव झड़-झड़ कर मिट्टी में मिल रहे थे। मैं अपने कमरे की खिड़की से उस बादाम के पेड़ पर गिरती वर्षा को बड़ी विचार मग्न होकर देख रही थी। यह बसन्त-ऋतु की वर्षा भी कितनी मनमोहक होती है। अकस्मात वर्षा थम गई और सूर्य की स्वर्ण-रश्मियां पवन के साथ मिलकर खिलवाड़ करने लगीं।

"यह प्रकृति भी कैसी चंचल-हृदया है। कितनी जल्दी दृश्यों पर पटाक्षेप कर देती है। अभी कुछ ही दिन पूर्व कैसे चाव से इसी प्रकृति ने अपने हाथों बादाम के पेड़ को पुष्पाभरणों से संवारा और आज अपने उन्हीं हाथों से उसका शृंगार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया—जैसे उसे सधवा से विधवा बना दिया—वह भी अपने ही हाथों—आह कितना साम्य है मुझ में और इस प्रकृति में। मैं भी तो अपने ही हाथों अपनी स्वर्ण-आकांक्षाओं रूपी दृश्य पर पटाक्षेप करना चाहती हूँ .... मैं भी तो.. ....

"दीदी बस बहुत हुआ। बस हो चुकी दीप जी से ढ़ेर सारी बातें—अब बैठ भी जाओ ना"। मेरी छोटी बहन रिमी ने आवाज़ देकर मुझे जैसे तन्द्रा से जगा दिया।

'दीप से—अरे नहीं . उससे बातें नहीं कर रही थी"। इसके साथ ही दीप का बिम्ब मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हो गया।

दीप—मेरा भावी पति जिसके साथ मैंने इच्छा से विवाह करना स्वीकार किया है। दीप जिसका व्यक्तित्व भी इस सुनहरी संध्या की भांति आकर्षक है और जिस प्रकार सूर्य की किरणों से बादाम के फूल खिल उठते हैं उसी प्रकार मैं भी उसे देखकर जैसे प्रफुल्लित हो जाती हूँ"। दीप का घर मेरे घर के बिल्कुल सामने है और इसी से रिमी ने समझा होगा कि मैं संभवतः उसी के साथ बात करती थी।

पर जबसे मैंने कॉलिज में पढ़ना आरम्भ किया है। तब से ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे अन्दर एक अज्ञात सा परिवर्तन आता जा रहा है। मैं समझ नहीं पाती कि मुझे क्या होता चला जा रहा है। इस परिवर्तन के विचार-मात्र से मेरी सारी देह काँप कर रह जाती है और मैं अपनी स्मृतियों को केवल दीप में केन्द्रित करने का प्रयत्न करती हूँ—हाँ दीप ने क्या कहा था "ओह—ज्योति तुम केवल मेरी हो! तुम स्वयं अपनी भी नहीं हो। तुम...... तुम" प्रेमावेग में दीप चुप हो गया। उस समय मैं भी प्रेम-विभोर हो गयी और मैंने मन, वचन और कर्म से केवल दीप की बनी रहने का प्रण किया था।

लेकिन अब अनुभव करती हूँ कि मानव-हृदय भी कैसी डाँवाँडोल प्रकृति का है। काश! दीप मैं केवल तुम्हारी ही बन कर रह पाती—केवल तुम में ही जलने वाली ज्योति। लेकिन तुम्हें कैसे समझाऊँ दीप कि कोई पवन का झोंका तुम्हारी ज्योति को स्थिर नहीं रहने देता—हाँ पवन ही तो—पवन खन्ना हमारे कॉलिज का लेक्चेरर जो हमारे ही मुहल्ले में आकर रहने लगा है। सागर की भाँति गम्भीर व्यक्तित्व का स्वामी।

न जाने क्यों पहले दिन ही उसे देखकर मैंने कुछ अजीब सा अनुभव किया था। ऐसा प्रतीत हुआ था कि मेरा हृदय दो दिशाओं में दौड़ना चाहता है। पहले तो इसे मैं अपने मन का भ्रम समझती

रही परन्तु कुछ दिन बाद मेरे मन ने स्वयं मुझ से कह दिया कि मैं अनायास ही पवन की ओर खिंचती चली जा रही हूँ। उसके लिए मेरे मन में ऐसी भावना जागृत हुई जिसे मैं श्रद्धा भी नहीं कह सकती थी—हाँ श्रद्धा से कुछ अधिक अपनत्वपूर्ण—तो क्या प्रेम? ओह! कैसी विड़म्बना है। मैं........मैं पवन को प्यार करती हूँ—नहीं, नहीं ऐसा असम्भव है। ज्योति एक समय एक दीप में जल सकती है और फिर मैं तो दीप की बनने वाली हूँ।

यह प्रेम सृष्टि का सब से बड़ा रहस्य है। मैंने मन को लाख समझाने का प्रयत्न किया पर यह कमबख्त जब माने तब ना। यद्यपि मैं यह जानती थी कि पवन विवाहित है परन्तु फिर भी अपने मन से उसका भाव न निकाल सकी। वह जैसे बलपूर्वक मेरे हृदय में समाने लगा।

मेरा जीवन एक दोराहे पर आ खड़ा हुआ है। मैं असमंजस में पड़ी हूँ कि किस रास्ते को पकड़ूँ। एक रास्ता उस झरने की ओर जाता है जिस में गति है, वेग है, जीवन का प्रवाह है जिसे देखकर जीवन की प्यास बढ़ जाती है—यह है दीप और दूसरी राह का रुख उस सागर की ओर है जो प्रशांत है, गम्भीर है जिसके पास प्यासे रहकर भी जैसे जीवन की सम्पूर्ण प्यास मिट जाती है—और यह सागर पवन है। एक में वासना की बू है दूसरे में वासना लेशमात्र को भी नहीं। पर तभी समाज का चित्र मेरी आँखों के आगे छा जाता है—तो क्या मैं आधुनिक तितली हूँ जिसका मन एक फूल के पराग से नहीं भरता भले ही वह फूल उसके कारण मुर्झा क्यों न जाए। "धिक्कार है तुम पर ज्योति धिक्कार है। तुम दीपक में स्थिर रहने की जगह शून्य पवन में सर्वदा के लिए डगमगाना और थरथराना चाहती हो? क्या यही है तुम्हारा आदर्श? तुम अपने स्वर्णिमय भविष्य का गला अपने हाथों स्वयं घोंट रही हो।" मेरे अवचेतन मन की प्रतिच्छाया मुझे धिक्कार उठती है और उसका धिक्कारना भी बिल्कुल ठीक है। पर क्या करूँ इस मन को कैसे समझाऊँ जो मेरे जीवन

नाटक के पटाक्षेप पर भी कुछ आक्षेप नहीं करता। ओह्—यह मुझे क्या हो गया है ? मैं पागल हो जाऊँगी। यह विचार मुझे नोच रहे हैं, काट रहे हैं।

अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को दीप की बातों को स्मरण कराने में रत करती हूँ। पर ऐसा लगता है कि उसकी प्रेम-रस में डूबी बातें अब मुझे उतनी विभोर नहीं करती।

सोचती हूँ जब दीप को मेरे इस मनोविकार का पता चल जाएगा तो वह क्या सोचेगा। उसकी सूक्ष्म भावनाओं को कितनी ठेस पहुँचेगी। हो सकता है वह सचमुच ही झरने का रूप धारण करले। झरना भला कब अपनी राह की बाधाओं से घबरा कर अपनी गति बन्द कर लेता है। वह तो जिस प्रकार हारा हुआ सिपाही झल्ला-झल्ला कर वार करता है उसी प्रकार उछल-उछल कर गरज-गरज कर अपना मार्ग बना ही लेता है। पर इस विचार मात्र से मेरे समस्त शरीर में झुरझुरी आती है।

"तो क्या मैं समाज के हाथों की कठपुतली बन कर रहूँ ? नहीं—आधुनिक युग में तो सबको मुक्त जीवन यापन करने का अधिकार है। हाँ, मैं भी मुक्त रहूँगी। मैं झरने की राह मे अपने को समर्पित नहीं होने दूंगी। मैं शिला बनूंगी—एक प्रस्तर प्रतिमा जिस पर झरना गरज-गरज कर सिर पटक-पटक कर कहेगा पर उसे अपने साथ बहा न पाएगा। अपने ऊपर कठोरता की ऐसी फिसलन लगाऊँगी कि झरने का पानी उस पर ठहरने नहीं पाएगा और सागर की लहर भी उसे केवल भिगो कर चली जाएगी, उस पर स्थिर नहीं रहेंगी। और वह प्रस्तर-प्रतिमा अपनी विवशता के बन्दन को सागर की उछाल और झरने की कल-कल ध्वनि में घोल देगी—सम्मिलित कर लेगी"।

हवा का झोंका

—सुभाषिणी कौल

लज्जावती ने झरोखे में से चीथड़ों और पुराने कागज़ों का ढेर सा बाहर धकेल दिया। तभी उसकी दृष्टि एक पुराने लिफाफे पर पड़ी जो नीचे गिर पड़ा था। लिफाफे को खोल कर उसने एक कागज़ का पुर्जा निकाला। यह बीमा की रसीद थी जो दो साल पुरानी थी। जब वह अपने बेटे पूरन की ट्रेनिंग का प्रीमियम दिया करती थी। रसीद हाथ में लिये वह खोई खोई नज़रों से शून्य की ओर घूरती रही तभी उसे पास वाले नल से बर्तनों की खनखनाहट सुनाई दी और उसने पलट कर देखा कि तारा देवी की बहू सुषमा उसकी ओर एकटक ताक रही थी। लज्जावती झेंप सी गई और उसने लिफाफे के सहित रसीद अपनी मुट्ठी में भींच ली और अपनी झेंप मिटाने के लिए सुषमा से बोली, "बहू इतने सवेरे नल पर क्या कर रही हो! अभी तो पानी आने में बड़ी देर है।" सुषमा सहम सी गई और धीरे से बोली, "बर्तन मांजने आई हूं, तब तक राख मलूंगी जब तक पानी आयेगा।"

अब तक भुवन भास्कर ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी मुहल्ले की और स्त्रियां भी नल पर आने लगीं। लज्जावती स्त्रियों को देखती हुई अन्दर चली गई।

जब से पूरन का पत्र-व्यवहार बन्द हुआ था उसको कभी-कभार ही किसी ने घर से बाहर आते देखा था। पास पडोस के लोगों में बड़ी बातें चली थीं। कइयों का ख्याल था कि पूरन ने बम्बई में महालक्ष्मी पर रेसकोर्स में बहुत सा पैसा कमाया और एक ऐंग्लो इण्डियन लड़की के साथ भाग गया। कुछ कहते थे कि वह बुरी संगत में पड़

कर शराबी और जुआरी बन गया। शम्भूनाथ बनिये ने जोकि कुछ ही दिन पहले बम्बई से आया था यह कहा था कि पूरन को उसने होटल वाले के पास बर्तन मांजते देखा था। सार यह कि जितने मुंह उतनी बातें। लेकिन आज तक किसी को यह हिम्मत न हुई कि वह लज्जावती से उस बारे में कुछ कहे। लज्जावती ने भी इस बात की किसी से चर्चा न की आज पहली बार सुषमा ने उसे पत्र के समान कोई कागज़ हाथ में लिए हुए घर के बरामदे में देखा, और फिर से पूरन की चर्चा सारे मुहल्ले में हो गई। यही चर्चा सुनकर शाम को एक पड़ौसिन लज्जावती के पास किसी बहाने आयी। जब वह अन्दर आयी तो लज्जावती एक टूटी कुर्सी के सहारे कमरे की छत पर कार्ड-बोर्ड का टुकड़ा लगा रही थी। वह चिड़ियों के घोंसले बनाने के असफल प्रयास को सफल बनाने का प्रयत्न कर रही थी। उसने पडोसिन की ओर तनिक भी ध्यान न दिया, पडोसिन खिसियानी बिल्ली सी होकर चली गई।

लज्जावती को अपने पुत्र पूरन से हार्दिक स्नेह था। परन्तु पूरन से जो उसने आशायें बांध रखी थीं उन पर पूरन की करनी ने पानी फेर दिया। लेकिन उसका हृदय अब भी वात्सल्य से ओत-प्रोत था। उसके कोई और सन्तान न थी जिससे वह स्नेह करती इसलिए शायद उसने इन निरीह, अज्ञान और सीधे पक्षियों पर स्नेह उंडेलना चाहा था। शायद वह इन्हीं को अपने जीवन की निधि समझती थी। कदाचित् वह समझती थी कि ये पक्षी सदैव उसका साथ देते रहेंगे। अब लज्जावती की दिनचर्या चिड़ियों के बच्चों को खिलाने पिलाने की ही होती थी। समयअनुसार एक एक करके चिड़ियों के सब बच्चे चले गये केवल एक बच्चा जिसको अभी पूरी तरह उड़ना नहीं आता था रह गया। वह उसे दिन भर छोटी छोटी ऊँचाइयों से उड़ना सिखाती। एक दिन दोपहर को लज्जावती किसी कार्यवश घर के भीतर गई थी तो कमरे की खिड़की खुली रह गई थी। जब वह लौटी तो बच्चे को

न पाकर घबरा उठी अर खिड़की की ओर ताकने लगी। बच्चे को उसने उड़ना सिखाया था और अब वह घबराई हुई थी क्योंकि बच्चा अब उड़ना सीख गया था। उसे फिर भी एक आशा बंधी थी कि वह अवश्य आयेगा। बह शाम तक उसकी प्रतीक्षा करती रही। रात गई उसको खटखटाने की आवाज़ सी सुनाई दी उसने जाकर द्वार खोला जब द्वार खुला तो गली को सुनसान पाया। केवल एक हवा का झोंका आया और लज्जावती के रूखे बालों को बिखेर कर चला गया। और लज्जावती ने देखा वह तोड़ी मरोड़ी हुई बीमा की रसीद उसके पैरों के पास पड़ी मचल रही है। लज्जावती कुछ देर तक शून्य दृष्टि से उस रसीद की छटपटाहट को देखती रही फिर उसने कराहते हुए झुककर रसीद को उठाया; कुछ देर उसे ध्यान से देखा; उसकी सिकुड़नों सिलवटों को मिटाया और उस पर प्यार से हाथ फेरती हुई एक लम्बी सांस छोड़कर वह मन्द गति से भीतर चली गई।

एक राही दो रास्ते

—बदरुन्निसा

सुनीता आज दो रोज़ के बाद घर आई है । वह कहाँ थी ? शायद वह अपनी सहेली सुशीला के घर गई थी। वह ठिठक गई....... आँखों में कुछ तैरने लगा वह दिन भी खूब था ...... वह जैसे ही घर में दाखिल हुई थी तो ड्राइंग रूम से ही माँ ने आवाज़ दी थी— "सुनीता पहले चाए पी ले ।" वह जैसे ही ड्राइंग रूम में गई देखा सामने उसके बौस मि० खन्ना सोफे पर बैठे चाए पी रहे हैं । उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ फिर भी जल्दी में अपने दोनों हाथ जोड़ दिये और एक प्याली चाए अपने लिए बनाने लगी । इतने में ही मि० खन्ना ने बड़े अदा के साथ मुस्कराते हुए अपनी खाली प्याली सुनीता के सामने खिसका दी । सुनीता ने पहले मि० खन्ना की और फिर अपनी चाय बनाई । इतने में ही छोटे भाई और बहनें लड़ने झगड़ने लगे उनका शोर सुनकर माँ ड्राइंग रूम से किचिन में चली गई। सुनीता ने एक दो चुस्की ली उसके बाद वह और चाए का गर्म पानी लेने के लिए किचिन में चली गई । जब वह ड्राइङ्ग रूम में गर्म चाए लेकर लौटी तो खन्ना जी उसकी चाए का आखरी घूंट पी रहे थे। सुनीता ने मुस्कराते हुए कहा—"मेरी चाय कहाँ गई ?" खन्ना ने शरारत भरे लहजे में कहा "वह तो मैं पी गया ।"

"लेकिन वह तो झूठी थी ।"

यह सुनकर मि० खन्ना कहकहा लगाते हुए बोला—"सच ,सुनीता तभी बहुत मीठी थी मैंने बड़े प्यार से पिया था ।"

और फिर सुनीता ने दुबारा दोनों कपों में चाय बनाना शुरू किया। खन्ना साहब ने अपनी कुर्सी को सुनीता के पास खिसका लिया और बोले—"ये नाज़ुक गुलाब की पंखुड़ियाँ किस लिए हैं। सुनीता ने शर्माते हुए कहा—"गर्म गर्म चाए के लिए।" खन्ना ने उसकी कलाई थाम ली और कहा—"नहीं भई सिर्फ प्यार के लिए।"

सुनीता गुदगुदी महसूस करके ज़ोर से हँसने लगी। वह हँसते हँसते दुहरी होती जा रही थी। थोड़ी देर बाद वह संजीदा हो गई। खन्ना अभी तक खाली कप को नशे में चूस रहे थे। इतने में अनिल बाहर से आया और सीधा ड्राइङ्ग रूम में चला आया। सुनीता ने भाई को देखा और उसको बड़े प्यार के साथ सीने से चिपटा लिया।

खन्ना साहब उठ खड़े हुए। घड़ी की तरफ़ देखकर बोले—साढ़े पाँच बजे क्लब की मीटिंग है। सुनीता तुम तो मेरी बेटी सुशीला की क्लास फ़ैलो हो। वह तुम्हें बहुत याद करती है। तुम तो कभी आती ही नहीं हो। बोलो आओगी न ?" और झुक कर सुनीता के नाज़ुक गुलाबी बालों पर हलकी सी चपत लगा दी। तीनों मुस्कराने लगे। मि० खन्ना अनिल से हाथ मिलाकर तेज़ कदमों के साथ बाहर चले गये। उनका ड्राइवर कार के पास खड़ा हुआ प्रतीक्षा कर रहा था। थोड़ी देर बाद कार सड़क पर कांपती हुई चल दी।

वह दरवाज़े के पास खड़ी देखती रही और देखते देखते विचारों की दुनिया में खो गई—"क्या अनिल की नौकरी लग जायगी ? खन्ना ज़रूर कहीं न कहीं लगा देगा।" पापा जी की मौत के बाद घर का हाल ही खराब हो गया है। वह सोचने लगी—"लेकिन दिनेश का क्या होगा ? दिनेश उसके सपनों का साथी। वे दोनों बी. ए. में क्लास फ़ैलो थे। तभी से प्यार कर रहे हैं एक दूसरे को। लेकिन यह बुड्ढा खन्ना ? उफ़! कितना भोला है ? उस रोज़ उसने शाम को पार्क में कहा था—"सुनीता कब तक हम दोनों इसी तरह अलग अलग रहेंगे ?

तब उसने कितनी बेरुखी के साथ जवाब दिया था—"तुम इतने बेताब क्यों हो रहे हो समझने की कोशिश क्यों नहीं करते ? मेरे कंधों पर पूरी गृहस्थी का भार है।" एक बार उसके मन में आया कि खन्ना की टाइपिस्ट का असली रूप उसे समझा दें। लेकिन वह ऐसा न कर सकी। नहीं नहीं वह दिनेश को अपने हाथों से नहीं निकलने देगी। खूसट बुड्ढे खन्ना से तो उसे काम निकालना है। उसके बाद, वह दिनेश की है। सिर्फ़ दिनेश की। तभी अनिल ने पीछे से उसके कंधे को पकड़कर कहा—"दीदी चलो अन्दर चलें।" वह फिर महसूस करने लगी जैसे किसी बड़े सफ़र से घर लौटी है।

निबन्ध-धारा

❀ डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित

❀ प्रो० काशीनाथ दर

❀ प्रो० चमनलाल सपरू

❀ डॉ० निज़ाम-उद्दीन

❀ ज० क० राष्ट्र-भाषा

सम्पादक ;

चमनलाल सपरू

दो शब्द

नीलजा का निबन्ध खण्ड आपके सामने प्रस्तुत करते हुए मेरे मन में आशंका उत्पन्न होती है कि क्या वास्तव में यह खण्ड कश्मीर के हिन्दी निबन्धकारों का प्रतिनिधत्व करता है? लेकिन उत्तर भी स्पष्ट है— हमारी कुछ सीमायें थी हम यहाँ के प्रत्येक निबन्धकार की रचना संगृहीत करने में असमर्थ थे। अतः चार प्रमुख निबन्धकारों की प्रतिनिधि कृतियों को ही 'नीलजा' के प्रथम अंक में प्रस्तुत किया गया। यद्यपि इस दिशा में लिखने वालों की संख्या इस अहिन्दी प्रान्त में उंगलियों पर गिनने योग्य ही है —लेकिन यह बात सत्य है कि जिन अधिकारी लेखकों को प्रस्तुत संग्रह में स्थान दिया गया है उनका इस प्रदेश में हिन्दी गद्य (विशेषकर निबन्ध-लेखन में) नई दिशा प्रदान करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन में प्रो० पृथ्वी नाथ पुष्प की कोई रचना मात्र इसलिए नहीं दी गई क्योंकि सम्पादक मण्डल ने निर्णय किया कि किसी लेखक की एक ही रचना 'नीलजा' के प्रस्तुत संकलन में संगृहीत की जाये। प्रो० पुष्प की कविता को संकलित करने के कारण हम उनका कोई प्रतिनिधि लेख प्रकाशित नहीं कर सके।

हिन्दी के पठन-पाठन का स्तर ऊँचा होने के साथ साथ यहाँ अब अनेकानेक विषयों पर उत्तमोत्तम निबन्ध लिखे जा रहे हैं जो विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। उनकी रचनाओं को क्रमशः 'नीलजा' के आगामी अंकों में प्रकाशित किया जाता रहेगा।

प्रस्तुत संग्रह के निबन्धकारों का परिचय इस प्रकार है:—

(१) प्रो० बलजिन्नाथ पण्डित, एम० ए०, पी० एच० डी० संस्कृत के धुरन्धर पण्डित होने के अतिरिक्त काश्मीर शैव-दर्शन के अधिकारी-विद्वान हैं।

(२) प्रो० काशीनाथ दर कुशल प्राध्यापक और सफल पत्रकार-लेखक हैं। आप कई पाठ्य-पुस्तकों के सम्पादक हैं। 'कश्यप' नामक स्थानीय पत्रिका के प्रधान-सम्पादक रह चुके हैं।

(३) चमन लाल सपरू —लेखक-सम्पादक-प्राध्यापक। कई पुस्तक-पुस्तकाओं को लिखा और सम्पादित किया। 'कश्यप' का सम्पादक रहा। विद्यार्थी जीवन से ही हिन्दी के रचनात्मक कार्य में अग्रसर रहा।

४. डा० निज़ाम-उद्दीन इस्लामिया कालेज में प्रोफेसर हैं। मेधावी अध्यापक होने के साथ वे प्रसिद्ध आलोचक के रूप में परिगणित किये जाते हैं। निबन्ध-लेखन में उनकी एक विशेष शैली है।

प्रस्तुत निबन्ध खण्ड का सम्पादन करने में जिन महानुभावों ने सहयोग दिया उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि वे अपनी सम्मति भेजकर अनुगृहीत करें।

—चमनलाल सपरू

दो शब्द

नीलजा का निबन्ध खण्ड आपके सामने प्रस्तुत करते हुए मेरे मन में आशंका उत्पन्न होती है कि क्या वास्तव में यह खण्ड कश्मीर के हिन्दी निबन्धकारों का प्रतिनिधत्व करता है ? लेकिन उत्तर भी स्पष्ट है— हमारी कुछ सीमायें थी हम यहाँ के प्रत्येक निबन्धकार की रचना संगृहीत करने में असमर्थ थे। अतः चार प्रमुख निबन्धकारों की प्रतिनिधि कृतियों को ही 'नीलजा' के प्रथम अंक में प्रस्तुत किया गया। यद्यपि इस दिशा में लिखने वालों की संख्या इस अहिन्दी प्रान्त में उंगलियों पर गिनने योग्य ही है —लेकिन यह बात सत्य है कि जिन अधिकारी लेखकों को प्रस्तुत संग्रह में स्थान दिया गया है उनका इस प्रदेश में हिन्दी गद्य (विशेषकर निबन्ध-लेखन में) नई दिशा प्रदान करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन में प्रो० पृथ्वी नाथ पुष्प की कोई रचना मात्र इसलिए नहीं दी गई क्योंकि सम्पादक मण्डल ने निर्णय किया कि किसी लेखक की एक ही रचना 'नीलजा' के प्रस्तुत संकलन में संगृहीत की जाये। प्रो० पुष्प की कविता को संकलित करने के कारण हम उनका कोई प्रतिनिधि लेख प्रकाशित नहीं कर सके।

हिन्दी के पठन-पाठन का स्तर ऊँचा होने के साथ साथ यहाँ अब अनेकानेक विषयों पर उत्तमोत्तम निबन्ध लिखे जा रहे हैं जो विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। उनकी रचनाओं को क्रमशः 'नीलजा' के आगामी अंकों में प्रकाशित किया जाता रहेगा।

प्रस्तुत संग्रह के निबन्धकारों का परिचय इस प्रकार है :—

(१) प्रो० बलजिन्नाथ पण्डित, एम० ए०, पी० एच० डी० संस्कृत के धुरन्धर पण्डित होने के अतिरिक्त काश्मीर शैव-दर्शन के अधिकारी-विद्वान हैं।

(२) प्रो० काशीनाथ दर कुशल प्राध्यापक और सफल पत्रकार-लेखक हैं। आप कई पाठ्य-पुस्तकों के सम्पादक हैं। 'कश्यप' नामक स्थानीय पत्रिका के प्रधान-सम्पादक रह चुके हैं।

(३) चमन लाल सपरू —लेखक-सम्पादक-प्राध्यापक। कई पुस्तक-पुस्तकाओं को लिखा और सम्पादित किया। 'कश्यप' का सम्पादक रहा। विद्यार्थी जीवन से ही हिन्दी के रचनात्मक कार्य में अग्रसर रहा।

४, डा० निज़ाम-उद्दीन इस्लामिया कालेज में प्रोफेसर हैं। मेधावी अध्यापक होने के साथ वे प्रसिद्ध आलोचक के रूप में परिगणित किये जाते हैं। निबन्ध-लेखन में उनकी एक विशेष शैली है।

प्रस्तुत निबन्ध खण्ड का सम्पादन करने में जिन महानुभावों ने सहयोग दिया उनके प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए विज्ञ पाठकों से अनुरोध है कि वे अपनी सम्मति भेजकर अनुगृहीत करें।

—चमनलाल सपरू

कश्मीरी भाषा

—डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित

उत्तरी भारत की सभी भाषाओं की मूल जननी संकृत भाषा है। महामुनि यास्क और पाणिनि के समय में जनसाधारण की भाषा संस्कृत थीं। जिस भाषा को एक विशाल जनता बोलती हो. उसके लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न जातियों और भिन्न-भिन्न मानव वर्गों में भिन्न-भिन्न ढ़ंग से बोला जाना एक अनिवार्य बात है। उस युग में संकृत भाषा की तीन बोलियां प्रचलित थीं। इनमें से एक बोली पूर्व में बोली जाती थी जिस का उन आचार्यो ने 'प्राचाँ' या 'प्राच्येषु' शब्दों से उल्लेख किया है। उत्तर में बोली जाने वाली संस्कृत भाषा की दूसरी बोली का उल्लेख उन्हों ने 'उदीच्या' या 'उदीच्येषु' शब्दों द्वारा किया है। तीसरी बोली मध्यवर्ती प्रदेशों में बोली जाती थो। यास्क मुनि ने उसका उल्लेख 'आर्येषु' शब्द द्वारा किया है। बोल-चाल की भाषा के लिए कालगति के अनुसार परिवर्तनशील होना भी अनिवर्य ही है। संस्कृत भाषा में भी परिवर्तन होते रहे और ई० पू० छठी शताब्दी में बोलचाल की भाषा एक नया रूप धारण कर चुकी थी। भगवान् बुद्ध ने उसी भाषा में अपने उपदेश कहे और कुछ समय तक बौद्ध आचार्य धर्म के प्रचार में उसी का प्रयोग करते रहे। आजकल के भाषा-शास्त्री उस भाषा को पाली भाषा कहते हैं। यह भाषा एक अति प्राचीन प्राकृत भाषा है। संस्कृत भाषा ने प्राकृत का रूप धारण किया तो वह तीन बोलियों के स्थान पर पांच या छः बोलियों के रूप में प्रकट हो गई। प्राच्य संस्कृत से मागधी प्राकृत का और मध्यवर्ती संस्कृत से शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ। उदीच्य संस्कृत से उस प्राकृत ने जन्म लिया जो बाद में बिगड़ कर लहंदी और पंजाबी के रूप में प्रकट हुई। शौरसेनी से हिन्दी और राजस्थानी भाषाएँ उत्पन्न हो गई। मागधी और शौरसेनी के बीच में जो प्राकृत भाषा प्रकट हुई उसे अर्द्धमागधी कहा गया। वर्तमान बिहारी और पूर्वी

हिन्दी का जन्म उसी प्राकृत से हुआ। दक्षिण में एक और प्राकृत भाषा प्रकट हो गई जिसे महाराष्ट्री कहा गया। वर्तमान मराठी उसी से बिगड़ कर बनी। मराठी के संसर्ग से बिगड़ी हुई राजस्थानी ही गुजराती कहलाती है। बंगाली, असमियां और उड़ियां भाषाएँ मागधी प्राकृत से उत्पन्न हो गई। इस तरह से पूर्व में आसामी से लेकर पश्चिम में लहंदी तक की सभी भाषाएँ संस्कृत भाषा से ही बिगड़-बिगड़ कर बनी हैं। इसी लिए इन भाषाओं को बोलने वाले लोग इन सब की केन्द्रीय भाषा अर्थात हिन्दी को समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा को बोलने वाले भी इन सभी भाषाओं को कुछ-कुछ समझ ही लेते हैं। इस तरह से ये सभी भाषाएँ एक वर्ग की भाषाएँ हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कश्मीर मण्डल की भाषा यद्यपि संस्कृत भाषा से निकटता का सम्बन्ध तो रखती है, परन्तु संस्कृत की इन पौत्रो. प्रपौत्रो भाषाओं के वर्ग की भाषा प्रतीत नहीं होती। हिन्दी भाषी जनता कश्मीरी को सीखे बिना अंशमात्र भी समझ नहीं पाती। इसी तरह कश्मीरी को बोलने वाले लोग हिन्दी भाषा को सीखे बिना समझ नहीं पाते। क्या कश्मीरी भाषा संकृत भाषा है या नहीं।

कश्मीरी भाषा के पशु पक्षियों के, अनाजों के, निकट सम्बन्धियों के. महीनों के, शरीर के अंगों के और गृहस्थी में काम आने वाली तथा ललित कला सम्बन्धी वस्तुओं के नाम, क्रिया वाची और संख्या वाची शब्द तथा विशेषण शब्द आदि संस्कृत शब्दों के इतने समीप हैं जितने शायद ही किसी और भाषा के हों। इस कारण कश्मीरी और संकृत दोनों भाषाओं के प्रति प्रेम और श्रद्धा रखने वाले विद्वान कश्मीरी भाषा को उदीची संस्कृत की प्रपौत्री ठहराने का यत्न करते हैं। वे महानुभाव संकृत की प्रपौत्री होना कश्मीरी भाषा के लिए गौरव का कारण समझते हैं। वर्तमान युग के कुछ एक चिन्तक यह कहते हैं कि कश्मीरी भाषा का जन्म हिब्रू भाषा से हुआ है। विचित्र प्रकार की इस क्लिष्ट कल्पना से सहमत होने वाले लोगों की संख्या भी बहुत है। वैसे कश्मीरी भाषा को न जानने वाली जनता को यह भाषा ध्वनिसाम्य के कारण पश्तो से मिलती जुलती प्रतीत होती है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है, श्रद्धा का युग नहीं। इस युग में प्रत्येक सिद्धान्त को विज्ञान की कसौटी पर परख लिया जाता है। भाषाओं के अध्ययन को वैज्ञानिक ढ़ंग से चलाने वाले भाषाशास्त्री कहलातें हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य में आज तक केवल एक महानुभाव ऐसे हुये हैं, जिन्हें भाषाशास्त्री कहा जा सकता है। वे महानुभाव हैं डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा उन के जीवन का मुख्य कार्यक्षेत्र वैज्ञानिक ढ़ंग से भाषाओं का अध्ययम करना ही रहा है और उन्होंने जीवन का अधिक भाग जम्मू में संस्कृत अध्यापक के रूप में बिताया है। आप उनसे संस्कृत को पढ़ें तो आप को ऐसा प्रतीत होगा, कि कहीं-कहीं महामुनि पाणिनी जैसे वैयाकरण भी वैज्ञानिक न बन कर श्रद्धालु और परम्परा के अनुयायी बने हैं। तो हमें इस युग में कश्मीरी भाषा के उद्गम के विषय में भी वैज्ञानिक ढंग से ही सोचना चाहिए। हमें श्रद्धा और रुचि को एक ओर रखकर भाषा-शास्त्र के नियमों को दृष्टिगोचर रखकर ही इस समस्या पर बिचार विमर्श करना चाहिए।

भाषा शास्त्र के मुख्य विषय छः होते हैं— (१) ध्वनि विज्ञान, (२) शब्द विज्ञान, (३) रूपभेद विज्ञान. (४) वाक्य विज्ञान, (५) अर्थ विज्ञान और (६) इतिहास तत्त्व विज्ञान। किसी भी भाषा के उद्गम् और विकास का अध्ययन करना हो तो उसके लिए यह आवश्यक होता है। कि उस भाषा को स्वरूप और व्यञ्जन रूप ध्वनियों पर विचार किया जाए। संसार में भाषाओं की कई एक जातियां हैं। आर्यभाषएँ, मंगोल भाषाएँ, द्राविड भाषाएँ. इत्यादि भिन्न-भिन्न जातियों से सम्बन्ध रखती है। भाषाओं की जातियों में प्रायः प्रत्येक जाति की भाषाएं भिन्न-भिन्न वर्गों और उपवर्गों में बटी रहती है। तो परीक्षणीय भाषा स्वरात्मक और व्यञ्जनात्मक ध्वनियों के प्रयोग, उच्चारण, परिवर्तन इत्यादि के विषय में यह देखा जाता है कि उस भाषा की ध्वनियों की ये विशेषताएँ किस-किस भाषा की उन विशेषताओं के साथ अधिक मिलती जुलती हैं। इस तरह से ध्वनिविज्ञान की समानता के आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों के नामों की परीक्षा को शब्दविज्ञान कहतें हैं। शरीर के अंगों के, निकट

सम्बन्धियों के, भौगोलिक वातावरण के, पशुओं और पक्षियों के, अनाजों फलों और सब्ज़ियों के, अन्य खाद्य, पेय आदि पदार्थों के, वारों, मासों ऋतुओं के, गृहस्थी और कृषि आदि की उपयोगी वस्तुओं के तथा गीत, नृत्य आदि कलाओं के नामों तथा मुख्य-मुख्य क्रिया पदों, विशेषणों आदि के वाचक शब्दों का अध्ययन शब्द विज्ञान का विषय होता है। प्रायः एक जाति की और एक वर्ग की भाषाओं के ये शब्द परस्पर मिलते जुलते हैं। इस समय भी उत्तरी भारत की, ईरान की और यूरोप की भाषाओं के ये शब्द परस्पर बहुत मिलते जुलते हैं, क्योंकि ये सभी भाषाएँ आर्य भाषाएँ हैं। एक जाति से सम्बन्ध रखने वाली भाषाएँ अवश्य ही शब्द विज्ञान में परस्पर मिलती जुलती हैं। ईरान की भाषा आर्य जाति से सम्बन्ध रखती है, परन्तु इस भाषा में भिन्न जातीय अरबी शब्द बहुत प्रचुरता में सभा गए हैं। इसी तरह दक्षिण भारत की द्राविड भाषाओं में संस्कृत भाषा के शब्द बहुत समा गए हैं। परन्तु फिर भी जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले शब्द प्रत्येक भाषा के अपने ही जातीय शब्द चलते रहते हैं। प्रायः एक जाति की भाषओं के भिन्न-भिन्न वर्गों की या उपवर्गों की भाषाओं में ध्वनि विज्ञान में बहुत समानता रहती हैं। इसी कारण भाषा के वर्गीकरण में ध्वनिविज्ञान शब्द विज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व रखता है।

प्रत्येक भाषा के संज्ञा सर्वनाम आदि शब्दों के लिंग, वचन और कारक आदि के आधार पर अनेक प्रकार के रूप बनते हैं। इसी तरह काल पुरुष, वचन, वाच्य के आधार पर क्रिया पदों के भी अनेक प्रकार के रूप बना करते हैं। भाषा के इस तत्त्व के विज्ञान को रूपभेद विज्ञान कहा जा सकता है। प्रायः एक वर्ग की भाषाओं में शब्दों के रूप भेद एक ढ़ंग से बनते हैं। इस तत्त्व की परीक्षा के आधार पर भी परीक्षणीय भाषा के उद्गम और विकास के विषय में निश्चय किया जा सकता है। भाषा शास्त्र का चौथा तत्त्व होता है वाक्य विज्ञान। प्रत्येक भाषा में वाक्य रचना का अपना ढंग होता है और यह ढंग कभी-कभी अन्य भाषाओं के ढंग से मिलता जुलता है। जिन भाषाओं का यह तत्त्व परस्पर मिलता

जुलता हो, उनको एक वर्ग के भीतर गिना जाता है। शब्दों अर्थों के परस्पर संकेत को और भिन्न-भिन्न युगों में तथा भिन्न २ प्रदेशों में शब्दों के इस अर्थसंकेत में आने वाले परिवर्तन आदि को अर्थविज्ञान में गिना जाता है। भाषा के अध्ययन में अर्थ विज्ञान भी महत्त्व रखता है। इस अर्थविज्ञान के आधार पर भाषा को बोलने वाले लोगों के इतिहास पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। क्योंकि शब्दों के अर्थ के परिवर्तन का कारण ऐतिहासिक घटनाओं के प्रभाव हुआ करतें हैं। भाषाओं के उपरोक्त पाँच तत्त्वों की समानता और विषमता के आधार पर उन्हें बोलने वाले मानव समाजों के अज्ञात इतिहास के विषय में अनुमान किए जा सकते हैं। इस तरह से भाषा के तत्त्वों से इतिहास के तत्त्वों का निष्कर्ष निकालने को इतिहासतत्त्व विज्ञान कहा जा सकता है। यह भाषा शास्त्र का छठा विषय है।

भाषा शास्त्र के नियमों के आधार पर भारत, अफगानिस्तान, ईरान आदि देशों की भाषाओं का सूक्ष्म और सविस्तार अध्ययन आज तक केवल जार्ज ग्रियर्सन ने किया। उन्होंने इन सभी भाषाओं के उपरोक्त तत्त्वों का विशेष अध्ययन करके जिन निष्कर्षों की घोषणा की उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं:—

(१) पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में आयरलैंड तक की प्राय: सभी भाषाएँ आर्य जाति की भाषाएँ हैं। इनमें बलोचिस्तान के एक खण्ड में बोली जाने वाली ब्राहुई भाषा और हंगरी की भाषा आर्य भाषाओं के समुद्र के बीच में द्वीपों की तरह विद्यमान है। क्योंकि यह दोनों भाषाएँ आर्य भाषाएँ नहीं हैं।

(२) आर्य भाषाओं के मुख्य दो वर्ग हैं– पश्चिमी वर्ग और पूर्वी वर्ग।

(३) पूर्वी वर्ग की भाषाओं के तीन उपवर्ग हैं— हिन्दी आर्य वर्ग ईरानी वर्ग और दरदी वर्ग। ऐसा प्रतीत होता है, कि दक्षिणपूर्व में फैलने वाले आर्य लोग काफी समय तक हिन्दुकुश पर्वत के आसपास रहते रहे। वहां से वे तीन वर्गों में बंट गये। एक वर्ग दक्षिण की ओर बढ़ कर

ईरान तक फैल गया, दूसरा वर्ग खैबर के मार्ग से होता हुआ उत्तरी भारत में आ बसा और तीसरा वर्ग चितराल के मार्ग से प्रवेश करके गिलगित, कश्मीर और पंजाब के उत्तर-पश्चिमी खण्ड में तथा अफगानिस्तान के उत्तर पूर्वी खण्ड में छा गया। इस तीसरे वर्ग को दरदी वर्ग कहा जा सकता है।

४) कश्मीरी भाषा आर्य भाषा है और पैशाच वर्ग की भाषा है। क्योंकि यह भाषा ध्वनि विज्ञान की दृष्टि से दरदी पैशाची भाषाओं के साथ बहुत मिलती जुलती है।

(५) कश्मीरी भाषा का साक्षात् सम्बन्ध दरदी भाषाओं के साथ है और परम्परित सम्बन्ध हिन्दी आर्य वर्ग की भाषाओं के साथ है।

संस्कृत साहित्य में पैशाची भाषा के और उस भाषा में गुणाढ्य द्वारा लिखी गई बृहत कथा के बहुत उल्लेख आए हैं। वह गुणाढ्य किधर का था, उसकी पैशाची भाषा कहां बोली जाती और यह भाषा क्या थी और कैसी थी— ये समस्याएं ऐसी हैं जो सम्भवतः निश्चित रूप से कभी भी सुलझने वाली नहीं हैं। वर्तमान युग में पैशाची भाषा में लिखी हुई कोई भी वस्तु उपलब्ध नहीं हो रही है। गुणाढ्य की बृहत कथा के तीन संस्कृत अनुवाद मिलते हैं। वे हैं—बुद्ध स्वामी का बृहत्कथा श्लोक संग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी और सोमदेव का कथा सरित्सागर। बुद्ध स्वामी नेपाली थे और क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव कश्मीरी थे। इससे यह बात सम्भव है कि पैशाची भाषा किसी उत्तरी प्रदेश में ही कभी बोली जाती हो। महाभारत में पिशाचों और दरदों का उल्लेख कम्बोजों के साथ आता है। कम्बोज काबुल को कहते थे। तदनुसार पिशाच और दरद प्रान्त काबुल के साथ-साथ जुड़े हुये रहे होंगे। वर्तमान युग में भी कश्मीर मण्डल के उत्तर में स्थित प्रदेश को दरदिस्तान कहते हैं। यह सम्भव है कि दरद और पिशाच किसी समय में कश्मीर के उत्तर में बसते रहे होंगे।

कश्मीर मण्डल का प्रारम्भिक इतिहास नीलमत पुराण में लिखा

हुआ है। तदनुसार प्रागैतिहासिक युग में इस स्थान पर एक विशाल पर्वतीय झील थी। कश्यप के प्रयत्न से पहाड़ को एक स्थान से तोड़ा गया। झील का जल बह निकला और कश्मीर मण्डल की भूमि सूख गई। यहां चश्मों और बर्फीले पर्वतों से जगह-जगह नदियां निकल कर बहने लगीं। तदनन्तर कश्यप ने उत्तर भारत से चारों वर्णों के लोगों को लाकर यहां बसाया। परन्तु वे लोग यहां सुख से रह नही सके। क्योंकि शीत-काल के आरम्भ में यहाँ पिशाच उपद्रव मचाया करते थे और लोगों को भाग जाना पड़ता था। कुछ समय तक भारतीय आर्य यहाँ आकर छः-छः मास रह कर लौट जाया करते थे। अन्त में चन्द्रदेव नामक एक ब्राह्मण ने नील नामक नाग देवता की उपासना की और उसने उसे पिशाचों को बलि देकर शान्ति में रखने का विधान बताया। अगले वर्ष लोगों ने उस विधान के अनुसार जब पिशाचों को शान्त भाव में रख लिया, तो उन्हें शीतकाल में यहां भागना नहीं पड़ा। नीलमत पुराण में और राजतरंगिणी में पिशाचों को भूतों में गिना गया है, मनुष्यों में नहीं। प्राचीन काल में जो लोग किसी जाति को युद्धों द्वारा बहुत सताया करते थे, वे लोग बाद में उस जाति की दृष्टि में भूतों में गिने जाते थे। भारतीय आर्यों की दृष्टि में ईरान के अहुर असुर अर्थात् भूत माने गये और उन अहुरों की दृष्टि में भारत के देव जाति के आर्य देव अर्थात जिन माने गये।

पिशाचों के विषय में नीलमत और राजतरंगिणी के आधार पर हम इतिहास के निम्नलिखित तत्त्व का निश्चय कर सकते हैं— ज्यों ही भारत के आर्य कश्मीर में आकर बस गए, त्यों ही उत्तर में स्थित प्रदेशों से पिशाच नाम के आर्य भी इस देश में घुस आये। ग्रीष्म में तो भारतीय आर्य बलपूर्वक इस देश पर अधिकार जमाते रहे, परन्तु शीतकाल में उत्तरीय पिशाच अधिक बल दिखाते। क्योंकि पर्वतीय और शीतल प्रदेशों के निवासी होने के कारण वे शीतकाल में उष्ण प्रदेशवासी आर्यों को परास्त कर देते। बाद में किसी आदिम निवासी नाग जाति के मुखिया नील ने इन पिशाचों और भारतीय आर्यों में परस्पर समझौता करवा दिया। भारतीय आर्यों ने पिशाचों को भूमि की उपज का भाग देना स्वीकार कर

लिया। उन्होंने भारतीय आर्यों की भूमि पर उपज का भाग लेकर कृषि करना मान लिया। इस तरह से शासक भारतीय आर्य भूस्वामी बने रहे और पिशाच लोग कृषक बन गये और दोनों जातियां परस्पर सहयोग कर रहने लगीं।

बलि शब्द के कई अर्थ होते हैं और उन में एक प्रसिद्ध अर्थ खेती की उपज भी है। रामायण तथा महाभरत काल में इस अर्थ में बलि शब्द का प्रयोग होता था। आक्रमणकारी होने के कारण ये पिशाच लोग भारतीय आर्यों के लिये भय का कारण बने रहे, इसी कारण भारत में इन्हें दरद भी कहा गया। दरद का अर्थ होता है भय देने वाला – "दरं, भयं ददातीति दरद:।" बहुत सम्भव है कि दरद स्थान के ऊबड़ खाबड़े पर्वतीय प्रदेशों के पिशाचों ने कश्मीर की समतल भूमि को बहुत पसन्द किया हो और गर्म प्रदेशों की अधिक उपजाऊ भूमि के निवासी भारतीय जनता ने इसे इतना पसन्द नहीं किया हो। सम्भवत: इसी कारण से उत्तरी भारत से केवल शासक वर्ग, ब्राह्मणवर्ग और व्यापारी वर्ग ही आया हो और कृषकों और श्रमिकों का वर्ग दरदस्थान से ही आया हो। साधारण जनता में प्राधान्य कृषकों और श्रमिकों का ही होता है। इस कारण यह बहुत सम्भव है कि कश्मोर में उस युग में अधिकांश दरद और पिशाच ही आकर बसे हों और भारतोय आर्य अतीव अल्पसंख्या में यहां आये हों। इसी कारण से कश्मीरी भाषा में पिशाची अंशों की ही प्रधानता रही हो और भारतीय आर्य अंश अप्रधान बन गए हों। मूल दरदी भाषा ने बिगड़ कर कालांतर में पेशाची प्राकृत का रूप धारण किया होगा और वह भी बिगड़ कर पैशाच अपभ्रंश के रूप में परिणत हो गई होगी। इसी पैशाची अपभ्रंश का उल्लेख बिल्हण जैसे कवियों ने 'देश भाषा' नाम से किया होगा। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर में आचार्य अभिनव गुप्त प्रकट हुये। उन्होंने तन्त्र सार, परात्रिंशिका विवरण आदि ग्रन्थों में कहीं-कहीं इस देशभाषा में कही गई सन्तों और सिद्धों की उक्तियों के उद्धरण प्रमाण रूप में दिये हैं। बहुत सम्भव है कि ये उद्धरण पैशाच अपभ्रंश के उदाहरण हों। जिस पैशाच का उल्लेख प्राकृत के वैयाकरणों ने किया है वह मुख्य पैशाची

की एक विशेष बोली थी! जिसे चूलिका पैशाची कहा करते थे। वह बृहत्कथा की पैशाची से भिन्न ही कोई प्राकृत बोली थी। मुख्य पिशाची के विषय में बहुत सम्भव यही है, कि वह मूल दरदी से बिगड़ कर बनी हो और ईसवी सन् की प्रथम साहस्री में उसे कश्मीर से चितराल तक बोला जाता हो। सम्भवतः इसी कारण से कश्मीर ही के क्षेमेन्द्र जैसे विद्वान उस भाषा का सफल अनुसन्धान कर, बृहत्कथा का संस्कृत अनुवाद कर सके।

अनुमानों के आधार पर कश्मीरी भाषा के उद्गम के विषय में यही अधिक सम्भावना है कि इसका जन्म पैशाच अपभ्रंश से हुआ होगा और उसकी उत्पति पैशाची प्राकृत से हुई होगी। वह प्राकृत भाषा दरदी भाषा से बिगड़ कर बनी होगी और दरदी भाषा भारतीय आर्य भाषा की तरह हिन्दी ईरानी सांझी भाषा से उत्पन्न हुई होगी। इस तरह से दरदी भाषा वैदिक संस्कृत भाषा का सम्बन्ध बहनों का सा है। कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का सम्बन्ध इस तरह से तीसरी चौथी पीढ़ी की मौसेरी बहनों जैसा सिद्ध होता है। यही कारण है कि कश्मीरी भाषा न समझने वाले लोग जब इस भाषा को सुनते हैं, तो उन्हें यह भाषा पर तो भाषा जेसी प्रतीत होती है। संस्कृत भाषा के साथ जो गहरा संबन्ध कश्मीरी भाषा का है वह बहुत पुराना, कई पीढ़ियों का परम्परा सम्बन्ध है और भाषा शास्त्र के विद्वान् महानुभावों के मत में इस भाषा का निकटतम सम्बन्ध शेष सभी दरदी पिशाची भाषाओं के साथ ही है, भारतीय आर्य भाषाओं के साथ नहीं।

जो लोग कश्मीरी भाषा का उद्गम हिब्रू भाषा से मानते हैं, वे किसी विज्ञान का आश्रय न लेकर और तिनकों का सहारा लेकर अपने मन की भावना को सन्तुष्ट करने का यत्न करते हैं। उनके विचार में किसी महानुभाव के नाम के साथ आदरसूचक शब्द "जू" को जोड़ना यहूदियों की देन है। परन्तु वे लोग इतना नहीं जानते कि कश्मीरी शब्द "जू" का मूल संस्कृत शब्द 'जीव' या दरदी भाषा का कोई समकक्ष शब्द हो सकता

है। यह 'जू' शब्द केवल कश्मीरी भाषा में ही प्रयुक्त नहीं होता। महाकवि सूरदास की ब्रज भाषा में इसका बहुत बार प्रयोग किया गया है। हिन्दी का 'जी' शब्द भी इस 'जू' शब्द का समकक्ष शब्द है दोनों का मूल संस्कृत जीव शब्द है। इस 'जू' शब्द के अतिरिक्त वे लोग कश्मीरी जनता के ढीले वेश के और कश्मीरियों के सर्वसाधारण चरित्र के आधार पर यह कहते हैं कि इस जाति का जन्म प्राचीन यहूदी जाति में हुआ है। इस विषय में वे कुछ एक यूरोपीय पर्यटकों के वचनों का भी आसरा लेते हैं। इस विषय में जो विचारनीय बात है, वह यह है कि सास्कृतिक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न जातियों का परस्पर आदान-प्रदान अनेक ढ़ंगों से हुआ करता है। केवल मात्र कुछ एक अंशों की समानता के ही आधार पर किसी जाति का जननी-पुत्री का सम्बन्ध किसी अन्य जाति से जोड़ना विद्वानों और बुद्धिमानो का काम नहीं कश्मीरी जनता की संस्कृति के अनेकों अंश मध्य एशिया के मंगोल लोगों से' रूस के आर्य लोगों से, ईरानी जनता से और अफगानों तथा लद्दाख के भोटों से मिलते जुलते हैं। कश्मीरियों की आकृति और उनके सिर की बनावट निश्चय से आर्य जाति से ही सम्बन्धित है, यहूदी जाति से नहीं Anthropology के आधार पर निश्चय पूर्वक यह कहा जा सकता है कि कश्मीर के लोग मूलतः आर्य हैं, हिब्रू नहीं है। दरद भी आर्य ही थे और हिन्दी आर्य भी आर्य ही थे। इस कारण कश्मीरी भाषा निःसन्देह एक आर्य भाषा है। यह बात और है कि भारत की अन्य भाषाओं का संस्कृत भाषा के साथ घना सम्बन्ध हैं और संस्कृत भाषा उन भाषाओं की मूल जननी है, परन्तु कश्मीरी भाषा वैसा सम्बन्ध सस्कृत भाषा के स्थान पर उस भाषा की बहन अर्थात् प्राचीन दरदी आर्य भाषा के साथ है जो भाषा कश्मीरी भाषा की मूल जननी है।

कश्मीरी भाषा की भी कई एक बोलियाँ और उपबोलियां हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ तीन है— (१) कश्मीरी (२) किश्तवाड़ी और (३) बद्रवाही। कश्मीरी बोली कश्मीर की घाटी में बोली जाती है और शेष दो क्रमशः किश्तवाड़ और भद्रवाह में। भद्रवाह में भद्रवाही के साथ-साथ ही डोगरी

भाषा भी बोली जाती है। रामबन और डोड़ा में भी एक बिशेष प्रकार की भद्रवाही और डोगरी दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है। मुजफराबाद में कुछ ही लोग कश्मीरी बोलते हैं। वहाँ जनसाधारण की भाषा पश्चिमी पंजाबी है। यही हाल राजौरी और पुँछ का है। इन तीन प्रदेशों का ऐतिहासिक सम्बन्ध कश्मीर के साथ बहुत अडिग रहा है, परन्तु भाषा के विषय में इन का सम्बन्ध कश्मीर की अपेक्षा पंजाब के ही साथ अधिक घना है। इसके विपरीत किशतवाड़ और भद्रवाह आदि प्रदेशों का ऐतिहासिक सम्बन्ध सदा डुग्गर देश से रहा है, परन्तु भाषामय संबन्ध अभी तक कश्मीर ही के साथ है। कश्मीर की बोली की भी तीन आवान्तर बोलियां इस समय उपलब्ध होती हैं। वे हैं—(१) कमराजी जिसे श्रीनगर से उत्तर और पश्चिम के प्रदेशों में बोला जाता है और जिसका मुख्यकेन्द्र सोपुर है, (२) श्रीनगर की बोली और (३) मराजी, जिसे कश्मीर के दक्षिणपूर्वी प्रदेशों में बोला जाता है और जिसका केन्द्र अनन्तनाग है। कश्मीरी की यह अवान्तर बोली कई अंशों में किशतवाड़ी बोली के समीप है।

जार्ज ग्रियर्सन के अनन्तर आज तक किसी महानुभाव ने भारत की इन सीमान्त भाषाओं के विषय में विशेष अनुसन्धान कार्य नहीं किया है। श्री ग्रियर्सन के द्वारा किए हुए काम का आश्रय लेकर श्री वर्मा ने कश्मीर की पहाड़ी भाषाओं और बोलियों पर कुछ सराहनीय अनुसन्धान कार्य किया। परन्तु उस कार्य का उपयोग करने वाला और उसे आगे ले चलने वाला विद्वान् अभी तक कोई देखने में नहीं आया। श्री ग्रियर्सन और श्री सिद्धेश्वर वर्मा ने जो काम किया है, उसे आगे ले जाने का बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र बन सकता है। परन्तु यह काम बहुत बड़ा है। यह किसी अकेले मनुष्य का काम नहीं। इसके लिये परिश्रमी विद्वानों के एक वर्ग की आवश्यकता है। ऐसे कार्य को सरकार, कोई विश्वविद्यालय या किसी सांस्कृतिक संस्था को हाथ में लेना चाहिए।

हब्बा खातून—एक परिचय !!!

—प्रो० काशीनाथ दर

कश्मीर की सांस्कृतिक थाती जितनी समृद्ध है उतनी ही विचित्र भी। प्रकृति की इस लाडली मानसपुत्री ने जहाँ समस्त संसार को अपनी नैसर्गिक तथा अप्रतिम शोभा-सुषमा से चकित किया वहाँ अपने मानसिक उबाल के माध्यम से साहित्य के हर एक अंग में नये अध्याय जोड़ दिये हैं। इतना ही नहीं विश्व के तीन बड़े धर्मों ने इसे अपनी प्रयोगशाला बनाया। इस तरह यहाँ के जन-जीवन में बौद्धों की करुणा, हिन्दुओं की सहिष्णुता तथा मुसलमानों की एक निष्ठता का समो जाना स्वाभाविक है। आजकल का कश्मीरी भले ही नाम से हिन्दू या मुसलमान हो, संस्कारवश उसमें यह तीनों गुण घुल-मिल गए हैं। सम्भवतः यही प्रमुख कारण कश्मीरियों के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण में निहित है। इस प्रकार जब चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग एक विदेशी संस्कृति ने यहाँ अन्दर आने के लिए द्वार पर दस्तक दी तो उसके लिए जैसे कश्मीरियों के जीवन दृष्टिकोण ने पहले से ही उर्वरा भूमि तैयार कर रखी थी। इस्लाम की प्रचारात्मक उग्रता किसी उल्लेखनीय प्रतिक्रिया के अभाव में विवश होकर सौम्यता में बदल गई। राजनीतिक तथा सामाजिक वातावरण में एक अभूतपूर्व मोड़ आया जनविश्वासों को धक्का लग जाने का भय था, परन्तु इसी धर्म संकट में साहित्य ने अपना दायित्व पूरा किया।

हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के इस संगम पर लल्लेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ, साहित्य के माध्यम से इस नारी-विभूति ने जन विश्वासों को ढह जाने से बचाया। जनता के सामने उस समय प्रत्यक्ष अति कड़वा था, अतः इस जागरूक कवयित्री ने प्रत्यक्ष की कड़वाहट में परोक्ष की मिठास मिला दी। भौतिकता से आँखें मीच कर आध्यात्मिकता का सुनहरा स्वप्न जनता के सामने रखा। इस प्रकार वर्तमान को हेय समझ

कर आध्यात्मिक लाभ के व्याज से इसने कश्मीरी जनता को जीने के लिए प्रेरणा दी, उनके लिए संजीवनी औषधि जुटा दी। 'लल्ला' का आध्यात्मवाद मूलतः शैव दर्शन का ऋणी है। परन्तु समय की नाड़ी पहचानते हुए इस ने इसमें इस्लामी सूफीवाद की भी पैवन्द लगा दी। यह समय की मांग भी थी, क्योंकि औपचारिक धर्म-परिवर्तन से पहले ही कश्मीर में इस्लामी सूफीवाद प्रविष्ट हो चुका था, और विचारों के आदान-प्रदान से कश्मीरी जीवन-दर्शन (शैव) से इसका सान्निध्य स्थापित हो चुका था। 'लल्ला' की उक्तियों में यद्यपि हिन्दु-शैव-दर्शन का स्वर मुखर है परन्तु इस्लामी सूफीवाद का प्रभाव भी उनमें स्पष्ट है।

"साहेब छु बिहथ पानु दुकानस
सॉरी मगान कॅंछा दिय ।
रट नो कॅंसी हुन्द रॉछ नो वानस
यि चे गछिय पाने नि ॥

[साहब स्वयं दुकान पर बैठा है; सब कुछ मांगते हैं; किसी को कोई रोक नहीं, दुकान की कोई रखवाली नहीं, जो तुम्हें चाहिये स्वयं उठा कर ले लो]

इस 'वाक्' में साहब शब्द कबीर ही की तरह परंब्रह्म का पर्याय है, और सूफी शब्दावली से उधृत है। आगे चलकर शेख नूरुद्दीन ने लल्ला से स्वर मिला कर आध्यात्मिकता का राग अलापा। इस तरह हिन्दू और मुसलमान अध्यात्मवादियों ने एक समानरूप से कश्मीरी जनता को अध्यात्म और असीम से एकाकार होने के लिए बराबर प्रेरणा दी। लल्ला तो सच्चे अर्थों में कश्मीरी-काव्य का प्रथम प्रकाश स्तम्भ है।

परन्तु जब हब्बा के स्वभाव-कोमल शरीर ने आँखें खोलीं, तो उस समय तक आध्यात्म की यह संगीत लहरी बासी पढ़ गई थी। जीवन के प्रति मूल्यों और अवस्थाओं में युगान्तर आ चुका था। समष्टि रूप में सोचने के स्थान पर व्यक्तिगत चिन्तन की प्रधानता हो गई। बहिर्मुखता

ने अन्तर्मुखता के लिए जगह खाली की; अतः इस भावुक कवयित्री ने प्रचलित लीक पर न चल कर कश्मीरी काव्य को एक स्वस्थ और प्राणवान् दिशा दी। 'जग-बीती' के मुँह में न पड़ कर इस ने 'आप-बीती' को वाणी दी। अपने वैयक्तिक अनुभवों तथा अनुभूतियों को समेट कर इस भावविह्वल नारी ने ऐसे मधुर-करुण काव्य का सृजन किया जो स्वयं में ही अपना उदाहरण है।

हब्बा को इन्हीं कारणों से कश्मीरी रोमान-गीतों की जननी कहा जाता है। सामयिक परिस्थितियों के परिवेश में उसका अन्तर्मुखी हो जाना स्वाभाविक जान पड़ता है। कश्मीर का अन्तिम देशीय शासक 'यूसुफशाह चक्क' भोग और विलास की प्रतिमूर्ति था। उस के शीशमहलों में कामुकता का नग्न नृत्य हो रहा था। उसकी प्रजा दो जून रोटी के लिये तरस रही थी। मुगलों ने इस निष्क्रिय शासक की विलास प्रियता और उसकी बिलखती प्रजा के आर्थिक शोषण से लाभ उठा कर छल और बल से यूसुफ के शीश महलों को धराशायी कर दिया, और इस तरह राजनीतिक वातावरण विषाक्त होने लगा। इस समय की मुसलमानों की एक जाति 'शियों' ने सुन्नियों' पर अत्याचार करने आरम्भ किए। इस तरह धार्मिक वातावरण भी संतोषजनक न था। समाज विशृङ्खल हो चुका था। हिन्दू पूर्ण रूप से निश्शंक जीवन व्यतीत नहीं कर रहे थे और स्वयं मुसलमानों में जातिवाद हिंसक रूप धारण कर रहा था। ऐसे अव्यवस्थित वातावरण में कवि का समष्टि के लिये सोचना नैसर्गिक जान पड़ता है। इतना ही नहीं उस समय दैवी प्रकोप एक और रूप में प्रकट हुआ। १५७६ में असमय हिमवर्षा होने के कारण कश्मीर में तीन वर्ष तक दुर्भिक्ष का विनाशकारी ताण्डव देखने में आया। ऐसे संकटपूर्ण वातावरण में भावुकता ने प्रत्यक्ष का रास्ता न पकड़ कर परोक्ष के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की। ऐसे वातावरण से जूझने और उसे मनोनुकूल बनाने की किसी में सामर्थ्य न थी : अतः एक प्रकार से इस कटुता को भुलाने के लिए कवयित्री ने प्रेम और अनुराग के गीत गाये।

दुर्भाग्य से इस कोकिल कंठों के जीवन वृत के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता केवल जनश्रुतियों और किंवदन्तियों का एक जाल-सा इसके व्यक्तित्व पर बुना हुआ है। धुँधलके में छिपे हुए उसके रंगीले जीवन के विषय में हमें कई फारसी इतिहासकारों के उद्धरण मिलते हैं। इन इतिहासों का प्रामाणिक महत्त्व विवादास्पद है। हब्बा के विषय में इन की प्रामाणिकता संदिग्ध इस लिए है कि इन में से कोई भी इतिहासकार उसका समकालीन न था। वे भी सुनी-सुनाई बातों का ही अपने इतिहासों में वर्णन करते हैं, फिर भी उन से लिखित वृत्त के प्रकाश में हम हब्बा के जीवन की धूमिल झांकी पा सकते हैं।

सर्वप्रथम पं० बीरबल काचरू ने हब्बा के सम्बन्ध में उल्लेख किया है। वह कहते हैं कि यूसुफशाह हब्बा खातून नाम वाली स्त्री से बहुत लगाव रखता था। उसके पूर्वज पांपुर के ग्राम चन्दहार गाँव के रहने वाले थे। जब वह वयस्का हुई तो उसका विवाह अपने ही वंश में किया गया; कुछ समय के बाद भावुकता में आकर वह कश्मीरी गाने-गाने लगी, जिस पर उसके ससुराल वाले उससे खिन्न होने लगे और अन्त में उसे घर से निकाल दिया। मायके जाते हुए रास्ते मे उसे यूसुफशाह के कर्मचारियों ने पकड़ लिया और अपने बादशाह के पास ले गय जिसने इसके रूप लावण्य और संगीत-कला पर मुग्ध होकर इसे 'सहवास' से सम्मानित किया।

श्री काचरू का यह इतिहास हब्बा से लगभग ढाई सौ वर्ष बाद लिखा गया था, और इसी तरह इसके कोई साठ-सत्तर वर्ष बाद हसन खुयहामी अपने प्रसिद्ध इतिहास "तारीखे-हसन" में हब्बा के सम्बन्ध में ये लिखते हैं—"कहते हैं कि हब्बा पाम्पुर के चन्दहार गाँव के एक किसान की लड़की थी। उसकी शादी एक लम्पट और अकिंचन व्यक्ति से हुई और हब्बा की इस से पट न सकी। इस तरह वे दोनों, पति-पत्नी अलग हो गए। एक दिन रास्ते में चलते हुए यूसुफशाह सुध-बुध खो बैठा और दूसरे दिन इसके माता-पिता को असंख्य धन देकर इस सुन्दरी को अपने 'सहवास' का सम्मान दिया।"

श्री काचरू और हसन के इन वृत्तों में यद्यपि कुछ अन्तर है फिर भी दो बातें स्पष्ट हो जाती हैः प्रथम यह कि हब्बा परित्यक्ता न हो कर भी अपने पति से अलग रहती थी; दूसरा यह कि दोनों इतिहासकारों ने 'सहवास' का प्रयोग करके यह बता देना चाहा है कि वह बादशाह की परिणीता न होकर प्रेयसी मात्र थी।

आगे चल कर मुहम्मद दीन 'फ़ोक' ने हब्बा के वास्तविक नाम की ओर सब से पहले संकेत दिया है। वे कहते हैं कि माता पिता ने इस का नाम 'ज़ून' रखा था. क्योंकि वह चाँद की तरह अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी थी। विवाह के बाद पति से अलग होने के बाद फ़ोक महोदय हब्बा और एक सूफी 'ख्वाजा महमूद' की भेंट की बात कहते हैं, जिसने इसका नाम 'ज़ून' से बदल कर हब्बा रखा। हसन के वृत्त से आगे चल कर इस में इतना ही भेद है कि हसन हब्बा को रखेल समझते हैं जब कि फ़ोक महोदय इसे महारानी। फ़ोक ने अपनी पुस्तक में यह उल्लेख नहीं किया कि श्री काचरू और हसन खुयहामी के अतिरिक्त उनके पास और कौनसी सामग्री थी जिस के आधार पर उन्होंने हब्बा को बेग़म लिखा है।

कश्मीर के प्रसिद्ध रोमानी कवि स्व० महजूर ने भी फ़ोक महोदय के ही विचारों का अनुमोदन किया है. और स्व० आज़ाद ने इस सम्बन्ध में हसन का अनुसरण किया है केवल इस अन्तर के साथ कि हब्बा का असली नाम 'ज़ून' था।

इस तरह यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यदि हब्बा का एक और नाम भी रहा हो तो इस में काई असंगति नहीं। कश्मीर में अभी तक विशेषतया पण्डित घरानों में पुत्री का मायके का नाम ससुराल में बदल जाता है। एक कारण यह भी हो सकता है कि बादशाह के सम्पर्क में आने पर 'ज़ून' ठेठ कश्मीरी नाम बदल कर अरबी नाम से उसे पुकारा गया हो। संभ्रान्त कुलीनता दिखाने के लिये इसके साथ खातून भी जोड़ा गया हो।

अब हमें यह देखना है कि उसके मुक्तकों की आन्तरिक साक्षी के साथ ऊपर दिये गये तथ्य कहां तक मेल खाते हैं। उसका असली नाम 'ज़ून' होना उसके इस पद्य से ध्वनित होता है :

"छस रिवान नालँ दिवान ग्रहणि मथ लोग ज़ूनि तै"

मैं रो रही हूँ, चीत्कार कर रही हूँ कि चाँद (ज़ून) को ग्रहण लग गया।

और उसके जन्मस्थान चन्द्रहार गाँव की पुष्टि उसके इस पद्य से होती है :

"माल्युन म्योन प्यठ चन्द्रहार छुये"

मेरा मायका चन्द्रहार के ऊपर वाले पठार पर है।

परन्तु ये दोनों पद्य श्री अमीन कामिल द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून" में नहीं मिलते। उन्हें ये दोनों पद्य प्रक्षिप्त जान पड़ते हैं। सम्भवतः किसी अज्ञात कवि ने हब्बा के सम्बन्ध में प्रचलित विश्वास के आधार पर उसकी रचनाओं में इन पद्यों को जाने अनजाने में मिला दिया हो।

जनश्रुतियों के आधार पर हब्बा के विषय में एक और बात उल्लेखनीय है। उसे 'भोटिया देश' से सम्बन्धित कहा गया है: इसका कारण सम्भवतः यह रहा हो कि 'शियों' के अत्याचार के तले पिसते हुए 'सुन्नी' यह कब सहन कर सकते थे कि उनकी ही जाति की एक लड़की 'शिया बादशाह' की खेल बन जाये, विशेषकर इस लिये भी क्योंकि हब्बा औपचारिक रूप से बादशाह की विवाहिता पत्नी न थी। अतः वह कश्मीरन न हो कर भाटिया थी। लेकिन इन जनश्रुतियों का हमारे लिये कोई महत्त्व नहीं है।

आन्तरिक साक्षी के सूत्र को बढ़ाते हुए हम केवल यह कह देना चाहते हैं कि कामिल महोदय द्वारा सम्पादित 'हब्बा खातून' में केवल बीस गीत संग्रहीत हैं, इसके अतिरिक्त इस भावप्रवण कवयित्री के बीसों

और गीत लोकजिह्वा पर विराजमान् हैं। जब तक इन सब गीतों का संग्रह करके एक बृहत प्रामाणिक संस्करण तैयार नहीं किया जाता तब तक हमें कामिल महोदय के इस संस्करण पर ही तुष्टि करनी होगी। सौभाग्य से हब्बा अपने जन्म के सम्बन्ध में मौन नहीं है; वह बड़े चाव से कहती है।

"मॉल मॉजि रछनस, मोल क्या दूरे
सास बज़ि चञ्जि ऑसिम सुलवान।
मे नो ज़ान्योव लोदमुत लूरे
कॉसि भा रॉविन शूरे पान॥"

मेरे माता पिता पिता ने किस लाड-प्यार से मुझे पाला था, सैंकड़ों दासियाँ मेरे नाज़ उठातीं थी, मुझे पता न था कि यह बना हुआ काम बिगड़ जाएगा, किसी का बचपना यूँ खो न जाए।

इस तरह यह बात साफ हो जाती है कि हब्बा का मैका एक अच्छा खाता पीता घराना था, जिसकी पुनरुक्ति कवयित्री यूँ करती है:

"मालिनि म्येनिय अर्बाब आसिय।
तवय द्राम हब्बखोतून नाव।
कम कम गोंदर आयेयि चमिथ,
दोह हरियामुत लूसित गोम॥

मेरे मायके वाले अपने समय के सामन्त थे। इस लिए मेरा नाम हब्बा खातून पड़ा; क्या कहूं, मुझ पर युवक जान छिड़कते थे, परन्तु वे दिन ढल चुके।

अतः नाम के साथ खातून जोड़ने का आग्रह उसके बहुत ऊँचें सामंत कुल में जन्म लेने के कारण हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि हब्बा अनपढ़ न थी:

,मॉल माजि त्रॉवनस सबकस दूरे

ओखनन वुलनम मूरे पान।
आर रोस तुलनम नार तोम्बूरे
कॉँसि मा रॉविन शूरे पान॥

मेरे माता पिता ने मुझे दूर विद्योपार्जन के लिए भेजा। अध्यापक ने मेरी पिटाई में कोई कसर न छोड़ी, निर्दय ने मेरी हड्डी-पसली सेंक दी; किसी का बचपना यूँ खो न जाए।

इसके अतिरिक्त कुलीन गृहस्थी की तरह उसकी धार्मिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया था :

"सिपॉरि त्रिह मरि पॅरिम यख आनो
फ़ेरि न कुनि गोम ज़ेरि ज़बरे।
अॅश्कुन खत पॅरुन काँसि अख आनो
चे कयहो वातियो म्यानि मरनय॥

मैंने कुरान-शरीफ के तीस सिपारे एक सार ही पढ़ डाले, और उन्हें दुहराने में 'ज़ेर' या 'ज़बर' का अंतर न आया, प्रेम-पत्र किसी से एक बार पढ़ा न गया, मुझे ऐ प्रीतम, मेरे मरने से क्या मिलेगा?

"मॉल्य मॉजि वुननम ह्यकिवॅड कूरे
वॉरिव आँगनि छिय प्रारान।
रोपि डोलि आँसिय सोनॅ कुन्दरे
कॅन्सि मा राविन शूरे पान॥

मेरे माता पिता ने मुझे कहा कि सुहागन बेटी, तेरी ससुराल वाले आँगन में प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरी रूपहली डोली के बांसों पर सुनहरा कागज़ मुढ़ा हुआ था।

परन्तु मालूम नहीं कि किस अशुभ घड़ी में हब्बा की यह रजित-खचित डोली मैके से ससुराल चली थी कि उस सुहागन की ससुराल

वालों से निभ न सकी, उसे उनके क्रूर-व्यवहार की प्रतिक्रिया में मैके वालों को सहायता के लिए पुकारना पड़ा :

"हशि लोयँनम टॅपिस थप
सुय म्ये गौ मरनि खोत सख
यन्द्र पचि प्यठ नेन्द्र प्ययिमो
चख़र फुट्ठस मालिन्यो
वॅरिव्यन सीत वार छस नो
चार करु म्योन मालिन्यो ॥"

चर्खा कातते मेरी आंखें चरखे के चक्र पर लग गईं, जिससे वह टूट गया, मेरी सास ने मेरी चोटी खीची जो मेरे लिए मृत्यु से भी कष्टदायक पीड़ा थी, मेरी सुसराल वालों से नहीं बनती, मायके वालो. मेरा उद्धार करो।

हब्बा अपने पति के नाम का उल्लेख इस प्रकार व्यंग्य रूप में करती है :

"मे हो कर च्य कित फम्ब मोयान्द,
हा 'अज़ीज़ि' 'ज़ूनि' मा रोश
खोतूनि पीरिय पूरि सामानय
छाव म्यांन दानै पोश ॥

(मैंने तुम्हारे लिए कठिनतर खोज की, ऐ अज़ीज़, अपने चाँद से मत रूठो, मैंने सोलह श्रृङ्गार किए हैं, आओ मेरे अनार फूलों के समान यौवन को लुटाओ।)

पति वियोग में व्याकुल हब्बा सदा अपने भाग्य को कोसती रहती है :

"यारि दादे तारि गयसो
बर वुक छुम आमतुय

हब्बखोतूनि वुन इशारा
दिल हुशियारा मालिनो ॥

(अपने प्रियतम के लिए मैं व्याकुल हो रही हूँ, मेरा जीवन मुझ पर भारी हो रहा है, मेरे मायके वालो मेरे इस इशारे (दुःख) को समझो ।)

यह बात तो निर्विवाद है कि हब्बा के ससुराल वालों ने जब उसे घोर यातनायें दी तो उसके माता पिता ने उसे मायके बुला लिया और वापिस भेजने के प्रति शिथिलता दिखाई। इस मानसिक स्थिति में वेदना और घुटन का तीव्राघात होना स्वाभाविक है।

जीवन के ढलते वर्षों में यह उसे खेद रहा कि यदि वह इस तड़प को ईश्वरोन्मुख करती तो उसका न इहलोक ही बिगड़ता न परलोक :

"हब्बा खोतून छय अरमान रुयेवान
कँरमय न जाँह बन्दगी ।
यावुन रोवमुत छुम याद दीवान
च्ये क्यहो गयी म्यॉन दुयि ॥

(हब्बा खातून को यह खेद रहा है कि उसने कभी तुम्हें बन्दगी नहीं की। खोई हुई जवानी मुझे याद आ रही है, तुम्हें क्यों मुझ से वैर हुआ ?)

आन्तरिक साक्षी के रूप में हम हब्बा के जीवन सम्बन्ध से ही कुछ कड़ियां जुटा सके हैं। उसके जन्म और मरण के विषय में हमें बड़ी सतर्कता से काम लेना पड़ेगा। उसके जीवित रहने की अवधि सौभाग्य से हमें उसके समकालीन और प्रेमी 'यूसुफशाह' के उल्लेख से मिल जाती है। कश्मीर के इस अन्तिम स्वतंत्र शासक का राज्य काल १५७९ ई० से १,८५ ई० तक माना गया है। इन वर्षों में हब्बा का जीवित होना नितान्त असंदिग्ध है। यह भी सच है कि यूसुफ अपने जीवन को संध्या में अधिक कामुक हो चला था, सम्भवतः इन वर्षों में इसे हब्बा

का सह्वास प्राप्त रहा होगा। फौक महोदय ने "तारीख बहारिस्तान शाह के आधार पर हब्बा की जन्म तिथि १६४१ ई० से १५५२ ई० में रखी है। स्व० आजाद ने भी इसी मत का समर्थन किया है। इस विषय के सम्बन्ध में कामिल महोदय लिखते हैं, मुझे इस तारीख (बहारिस्तान शाही) में हब्बा के जन्म की तिथि की बात तो अलग रही, इस का उल्लेख तक नहीं मिला।" यह घटना तो सर्वविदित है और इतिहास सम्मत भी कि अकबर बादशाह ने १५८५ ई० में कश्मीर पर अधिकार किया और यूसुफशाह को बन्दी बना कर बंगाल भेज दिया। अतः अपने प्रेमी का सितारा डूब जाने पर हब्बा की क्या दशा रही होगी, यह सब अज्ञात है। सम्भव है भविष्य में इसे सम्बन्ध में नए तथ्य प्रकाश में आयें। स्व० फौक, स्व० आज़ाद, तथा स्व० महजूर हब्बा की आयु ५६-५७ वर्ष के लगभग मानते हैं। इनमें जनश्रुतियों का आभार भी सम्मिलित है। अतः जब तक कोई ठोस तर्क इस अनुमान को झुठलाने के लिए हमारे सामने नहीं आता, तब तक इन महानुभावों के इस मत को मानने में हमें हमें कोई संकोच नहीं।

हब्बा का जन्मस्थान आन्तरिक और बाह्य साक्ष्य के आधार पर चन्द्रहार ही है। श्रीनगर से लगभग पाँच छः मील की दूरी पर 'पाम्पुर' का चिरविख्यात गाँव केसर की क्यारियों के कारण प्रसिद्ध है। इसी पाँपुर से बायी ओर डेढ़ मील की दूरी पर चन्द्रहार नाम का छोटा सा गांव आज भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। इस गाँव की टेकड़ियों पर केसर की क्यारियों की छटा कार्तिक पूर्निमा की चाँदनी में देखते बनती है। यहाँ के झरने भी बड़े सुन्दर है।

"हब्बा" शब्द स्पष्टतः स्त्रीवाचक है और अरबी "हबीब" का संक्षिप्त रूप है। हबीब का अर्थ प्यारा है, अतः हब्बा खातून का अर्थ हुआ प्यारी रमणी। अपने अपूर्व व्यक्तित्व के नाते वह केवल यूसुफ शाह की ही प्रेयसी न थी, अपितु समस्त कश्मीरी जनता के दिल की रानी थी।

हब्बा की काव्य-साधना का प्रधान स्वर शृङ्गार है। शृंगार के संयोग-पक्ष का क्षणिक साक्षात्कार होने के कारण उसकी कल्पना ने इसके वियोग-पक्ष में गहरे रंग भरे हैं। जीवन की यात्रा में उसे फूल न मिल सके, अतः उसने कांटों से अपनी झोली भर ली। यूसुफ का साहचर्य पाकर भी हब्बा संयोग के गीत नहीं गा सकी। सम्भवतः जीवन के द्वार पर जो भर्त्सना उसे मिली उसकी प्रतिध्वनि बराबर उसके मानसिक धरातल को झंकृत करती रही। क्षणिक सुख स्थायी दुःख के नीचे दब गया।

हब्बा ने जिस समाज में जन्म लिया था, वह आन्तरिक शोषण और बाह्य आक्रमण के दो पाटों में पिसता जा रहा था। सामंतशाही पूरे यौवन पर थी। कश्मीर की राजनीतिक बिसात पर कुशल मुग़ुल नाना प्रकार के मोहरे लड़ा रहा था। जनता का सुख चैन छिन चुका था। ऐसे ही दूषित वातावरण में हब्बा का जन्म हुआ। उसके निजी जीवन की घुटन समाज में पनपती हुई कुण्ठा से कुछ कम न थी, अतः हब्बा ने जन्म-जीवन की उपेक्षा करके भी निजी जीवन के व्याज से उसका प्रतिनिधित्व किया। वह जीवन से भागी नहीं। उसका काव्य इसी कारण पराजित के गीत नहीं कहा जा सकता। 'स्व' में समाज को विलीन करके उसने आँसू बहाये हैं। हब्बा में व्यक्तिगत अहं इतना प्रगल्भ था कि समाज का प्रतिबिम्ब उतारने के बदले उसने अपने हृदय को वाणी देना ही अधिक संगत समझा।

इसी व्यक्तिगत कविता की पराकाष्ठा 'रोमानवाद' है। एक रोमानी कवि अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करने की न क्षमता रखता और न ही समझौता करने की। अपने चारों ओर से निश्चिन्त होकर वह अपने में एक नये ही संसार का सृजन करता है जिसमें उसके मीठे कड़वे अनुभव उसे प्रेरणा देते हैं। जीवन की दौड़ में वह जीत और हार के मीलपत्थर नहीं गिनता, अपनी साधना में मग्न होकर लक्ष्यप्राप्ति के लिये भी उतना उत्सुक नहीं होता।

यद्यपि ऐसी कविता सम्पूर्ण जीवन की आलोचना नहीं हो सकती फिर भी इसे संकीर्ण व्यक्ति-बोध कराने की छन्दोबद्ध रचना नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मानव की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ विराट् से सम्बद्ध हैं, विश्वव्यापी गुण लिए हुए हैं; हब्बा की ही तरह लाखों ऐसी ललनाएं उस समय भी रहीं होंगी जिन्होंने समाज के प्रताड़न को गाय की तरह सहन किया, हब्बा की तरह घर से भागी नहीं। हब्बा ने अपने दर्द को ऐसी करुण-मधुर भाषा कलेवर पहनाया कि इस तरह उन लाखों निरीह अबलाओं का भी प्रतिनिधित्व हुआ।

लौकिक प्रेम-प्रधान गीतों का श्रीगणेश कश्मीरी साहित्य में हब्बा के द्वारा ही हुआ। उसका "लोल" वास्तव में लौकिक प्रेम का प्रतीक है। अतः इसका प्रणय-प्रतिपादन इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है। इन्द्रियसुख के प्रति हब्बा में कभी वितृष्णा पैदा नहीं हुई; भोग की परिणति उसके विचारानुसार योग में नहीं: वह मुड़-मुड़ कर उस भोग को प्राप्ति के लिए लालायित है जो उससे छिन चुका है। अपने भाग्य से उसे इसी लिये रोष है। सुहागिनि होकर यह वियोगिनी बनने के तैयार नहीं; वियोग में भी वह संयोग का मातम करती है; 'क्या खोया' यह तो यह तो उसके पद्यों की निरन्तर और अविच्छिन्न ध्वनि है। इतना सब करने के बाद भी आत्मतुष्टि नहीं अपितु व्यग्रता है, बेचैनी है; और इसी अधीरता का पुट उसके समस्त काव्य में मुखर हो उठा है। हब्बा को रंगीन और चाँद-धुली रातों का एकान्त डसने लगता है, और वह हर समय अपने प्रीतम को अपने शरीरिक आकर्षण से पाना चाहती है, मनोबल उस के भाव-कोष में नहीं :

"दोय हरि रुपॅ तन मलय
म्य च्यॉन कल छ्येयम ।
चन्दन वानि बो तन छलय
लालो वॅल आलवय ॥

"मैं अपने रुपहले शरीर पर उभटन मलूँगी, मुझे तुम्हारे बिन

कल नहीं। मैं चन्दन के पानी से अपना शरीर धोऊँगी, हे प्यारे, तुम पर मैं अपना सिर निछावर करूँगी।

अतः प्रेम-प्रतिपादन के हेतु हब्बा के काव्य में रागात्मक तत्त्व बहुत प्रबल हो उठा है: यह रागात्मकता हब्बा के पद्यों की प्राण है, और इसमें यद्यपि वह आत्मविभोर हो उठती है परन्तु आत्मविस्मृति में खो नहीं जाती। इसी कारण उसकी लोकप्रियता आज तक बनी हुई है। संवेदनशीलता तो ऐसे काव्य में स्वतः सिद्ध होती है।

उसके काव्य पर फारसी काव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उसकी भाषा भाव और शैली तो स्पष्टतः फारसी पद्धति के ऋणी हैं, और कहीं-कहीं पर तो हब्बा अपने अतीत से इतनी कट चुकी है कि कश्मीरी नायक-नायिकाओं के बदले फारसी काव्यों में दिये गए नायक-नायिकाओं का ही उल्लेख करती है। 'यूसुफ' और 'जुलेखा' के बदले वह 'नागराय' और 'हीमाल' का प्रयोग कर सकती थी। कहीं-कही पर तो फारसी शब्दों के तत्सम रूपों के प्रति उसका मोह बहुत दिखाई देता है, जैसे 'शमा' के बदले वह कश्मीरी 'चोंग' अथवा 'परवाना' के बदले कश्मीरी 'पनपोंपुर' लिख सकती थी। सम्भवतः शिष्ट समाज में उस समय में फारसी-मिश्रित कश्मीरी का अधिक चलन रहा होगा।

हब्बा का यह करुण-मधुर विलाप वास्तव में कश्मीरी नारी की युग-युग की प्यास का पद्यात्मक अनुवाद है और जब तक कश्मीरी ललना अपने अतीत से जीवन-श्वास ग्रहण करती रहेगी, तब तक हब्बा के गीत उसकी धड़कनों के साथ एकस्वर होते रहेंगे।

सम्भवतः इसी भाव से प्रेरित होकर स्व० महजूर ने अपने एक पद्य में स्व० रसूल मीर को उलाहना देते हुये हब्बा की गरिमाका आभार स्वीकार किया :

शाहबादि रसूलमीर याद करान कन्दुहारिच ज़ून ।
तमिस क्याज़ि छचनु च्येतस प्यवान चन्द्रहारिच ज़ून ॥

"रसूल मीर शाहाबादी अपने काव्य में बार-बार कन्दहार के चांद को याद करता है (उस की उपमायें बांधता है); उसे क्यों चन्द्रहार की ज़ून (चांद) हव्वा याद नहीं आती है ?"

इससे अधिक संश्लिष्ट, सारगर्भित श्रद्धाञ्जलि और क्या हो सकती है, और वह भी उस व्यक्ति के मुँह से जो आधुनिक कश्मीरी कविता का सर्वश्रेष्ठ रोमानी कवि हुआ हो ।

हिन्दी कविता में कश्मीर

—चमनलाल सपरू

कश्मीर आदि काल से साधकों, पर्यटकों और साहित्यकों का आकर्षण केन्द्र रहा है। हर एक ने कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य और यहाँ की संस्कृति से प्रभावित होकर कुछ न कुछ लिखा है। संस्कृत साहित्य में कश्मीर का विशद वर्णन हुआ है। महाकवि कालिदास के अद्भुत प्रकृति-वर्णन करने पर आलोचक उन्हें कश्मीर वासी ही सिद्ध कर चुके हैं। मंख कवि ने श्री कृष्ण चरितम् और कल्हण ने राजतरंगिनी में कश्मीर के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। प्रसिद्ध दार्शनिक अभिनव गुप्त ने तंत्रालोक के सैंतीसवें आह्निक में काश्मीर का रोचक वर्णन किया है। "कविता के विलास तो सचमुच केसर के पुष्पों के सगे भाई होते हैं, क्योंकि शारदा देवी के देश कश्मीर को छोड़ कर उन दो वस्तुओं की उत्पत्ति मैं ने अन्यत्र कहीं नहीं देखी है"[1]

फारसी के लेखक तो कश्मीर को ईराने-सगीर ही मानते आये हैं। "यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यही है, यहीं हैं।[2] इसी प्रकार अंग्रेज़ी साहित्य में भी कश्मीर का विभिन्न पहलुओं से विशद वर्णन हुआ है। कई सुन्दर कविताएँ भी कश्मीर के बारे में अंग्रेज़ी कवियों ने की हैं।

इसके अतिरिक्त भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी अनेक कवितायें कश्मीर के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। पंजाबी और उर्दू[3] में

---

१. सहोदराः कुङ्कुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः
न शारदा देशमपास्य दृष्टो मया यदन्त्र तयोः प्ररोहः ॥ —बिल्हण

२. अगर फिरदोस बर रूये ज़मीं अस्त, हमीं अस्त हमीं अस्त हमीं अस्त ।

३, क) पंजाबी कविता विच कश्मीर—सं० सरदार हरबंस सिंह आजाद ।
ख) ए जन्नत-ए-कश्मीर— सं० आबिद मनाबरी ।

इस प्रकार की कविताओं के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं इन पंक्तियों के लेखक ने "हिन्दी कविता में कश्मीर" नामक काव्य संग्रह लगभग तैयार किया है जो यथा-शीघ्र प्रकाशित करने की व्यवस्था की जा रही है। मेरे मन में कई वर्ष पूर्व इस प्रकार का एक प्रतिनिधि संकलन तैयार करने की इच्छा हुई थी और इस सम्बन्ध में सामग्री संकलन करने के लिए क़दम उठाया। सबसे पहले मैं ने वर्तमान प्रमुख हिन्दी कवियों से पत्र व्यवहार किया। कई महानुभाओं ने तुरन्त पत्रोत्तर दिया और अपनी लिखी कवितायें भेजीं। डॉ० हरिवंश राय बच्चन कई बार कश्मीर आये हैं। उन्होने कई कश्मीरी कविताओं का हिन्दी में पद्यानुवाद किया है। मेरा विचार था उन्होंने भी कश्मीर के बारे में कोई कविता अवश्य लिखी होगी। लेकिन उत्तर मिला—— "......मैंने कश्मीर पर शायद ही कुछ लिखा हो। मैं कश्मीर-कई बार गया। पर इसके सौन्दर्य पर इतना मुग्ध हुआ कि वाणी ही मौन हो गई। ......"

कश्मीर पर लिखी हुई हिन्दी में जो भी कवितायें मुझे उपलब्ध हुईं उनको मैं चार खण्डों में प्रस्तुत करता हूँ——

१, प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी कश्मीर पर कवितायें।

२. भारत-पाक युद्ध के समय लिखी कश्मीर सम्बन्धी कवितायें।

३. विविध-कवितायें।

४. स्थानीय कवियों की कवितायें।

१. प्रकृति वर्णन सम्बन्धी कवितायें :—

कश्मीर के प्राकृतिक-सौन्दर्य से प्रभावित होकर हिन्दी कवियों ने अधिकांश कविताएँ लिखी हैं। नंदन-कानन, भारत का मुकुट-मणि यहाँ की झीलें, ऊँची-ऊंची बर्फ से ढकी चोटियाँ, लहलहाते खेतों वाला कश्मीर कवियों के लिए प्रेरणा-दायक है। हिन्दी में लिखी हुई पहली कश्मीर

सम्बन्धी कविता में भी कश्मीर-सुषमा का ही वर्णन किया गया है। इस कविता के लेखक हैं श्रीधर पाठक। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

"धनि धनि श्री कश्मीर-धरनि. मनहरनि सुहावनि।
धनि कश्यप-जस-धुजा, विश्वमोहिनी मन भावनि ॥
धनि पुरातन प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि।
स्वर्ग सहोदरि धरनि बरनि हारे कोविद कवि ॥"

पाठक जी की कविता में प्रकृति वर्णन बड़ा ही सजीव हुआ है। साथ ही कई पंक्तियों में अनुप्रास की छटा देखने योग्य है—

मृदुल दूब-दल रचित, कुसुम-भूषित सुचि शाद्वल।
ललित-लतावलि-वलित कलित कमनीय, सलिलथल ॥

अनेक झीलों को देख कर कवि के मन में विचार उत्पन्न होता है संभवतः यह प्रकृति देवी ने अपने रूप सौन्दर्य को देखने के लिए दर्पण सजाये हैं :—

एक एक सों सुघर अनेक. सरोवर छाये।
प्रकृति देवि निज-रूप- लखन, मनु मुकुर लगाये ॥

× × × × ×

प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति ॥
विमल अम्बु सर मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपहि तन मन वारति ॥

कश्मीर के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन करते हुए पाठकजी कहतें हैं कि इसके सौन्दर्य की उपमा किससे दी जाए? कश्मीर अनुपम है। स्वर्ग

और कश्मीर की तुलना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में कौन किससे सुन्दरता में बढ़कर है ? यह कहना कवि के लिए कठिन है —

"कौ सोभा कौ भौन रूप कौ कौन समुन्दर ?
काकौं उपमा उचित दैन-दोउन में काकी ?
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै ।
या सम दूजौ और सृष्टि में दृष्टि न आवै ॥"

श्री सत्यनारायण पाण्डेय ने 'कश्मीर-विजय' नाम से एक खण्ड काव्य लिखा है । इस में आरम्भ में कश्मीर की प्रकृति का विशद वर्णन किया गया है । पाण्डेय जी द्वारा रचित इस ग्रंथ का एक पद इस प्रकार है—

'जलद धरा में मनमाना बरसाते वारि,
उर्वरा बसुन्धरा भी फूली न समाती है ।
कमल वनों में मकरंद झूमता है भरा,
कुंकुम पराग की बनाई यहाँ जाती है ।
पथिक न भूलें फल-भार से झुकें हैं द्रुम;
अतिथि प्रसन्न पूजा प्रकृति चढ़ाती है ।
आठों याम चन्द्र-सूर्य आरती उतारतें हैं,
सरित सरोवरों में नियति नहाती है ॥

डॉ० सूर्य नारायण 'कश्मीर-सुषमा' नामक कविता में जहाँ कश्मीर के दर्शनीय स्थलों यथा— पहलगाँव, शालामार और निशात आदि से प्रभावित हैं वहाँ अबोध कश्मोरी महिलाओं के लावण्य का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं :—

कुञ्चित केशमयी कामिनियाँ रूप राशि अम्लान ।
शुभ्र कुमुदिनी सी कर्दम-मय मलिन-वसन-अज्ञान ॥

काश्मीर के वन्य कुसुम सी जन-मन करती भ्रान्त।
चंचल मीनों सी, चितवन सी निर्विकार और शान्त॥

कश्मीर को प्रेरणादायक सुषमा का वर्णन अमरबहादुरसिंह अमरेश ने इन शब्दों में किया है :—

"जिसके बर्फीले माथे पर किरणें रास रचाती हैं।
पहन रेशमी साड़ी ऋतुयें गुल्मों में छिप जाती हैं।
जहाँ घटाओं के घुँघुरू को पुरवैया स्वर देती है
कली-कली को जहाँ कोकिला बाहों में भर लेती है
चट्टानों पर जहाँ फिसलती चंदा की तसवीर है
वह धरती का स्वर्ग हमारा केसरिया कश्मीर है।

हरिकृष्ण प्रेमी हिन्दी के उच्चकोटि के नाटककार होने के साथ-साथ एक सहृदय कवि भी हैं। कश्मीर पर लिखी हुई उनकी एक कविता "यह मेरा कश्मीर" उपर्युक्त विषय पर लिखी एक सर्वप्रिय रचना है। कश्मीर की धरती स्वर्ग के समान है। यहाँ की एक एक वस्तु निराली है और यहाँ की सुषमा पर सारा जहान कुर्बान है। पर्वतों पर चमकती चोटियाँ ऐसे लग रही हैं मानो उन्होंने बर्फ का दुशाला सर पर ओढ़ा है। झरणों में पानी नहीं चाँदी पिघल कर बह रही है। यह धरती नहीं कुदरत की मादक मुस्कान है। इसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पेड़ इस प्रकार लग रहे हैं मानो सैनिक इसकी पहरेदारी कर रहे हैं। प्रेमी की कश्मीर पर लिखी हुई कविता से कुछ अंश आस्वादन करने योग्य है :—

"यह बहिश्त की बगिया
सुमनों सुफलों वाली;
इसका यौवन देख खुशी से
फूल उठा खुद माली
मादक नज़र फूँक देती है
मुर्दों में भी जान।

यह मेरा कश्मीर
कि जिसकी धरती स्वर्ग-समान

चक्करदार मार्ग बाला के
बालों से घुँघराले
फिसल गया कोई भूले से
पड़े जान के लाले
इसकी उलझनभरी डगर पर
है हैरान जहान।
यह मेरा कश्मीर......।

झूल रही झीलों में झूला
चढ़ती हुई जवानी;
चंचल चाल हंस सी
चलती नौकायें मस्तानी;
लहरों से टकरा कर गातीं
हैं पतवारें गान। यह मेरा......

वीरेन्द्र मिश्र ने संगीत की लय पर एक गेय कविता लिखी है। इस में से एक पद्य उद्धृत है :—

है डलझील निशात जहाँ
एक सुरमई रात जहाँ
कुहरा डूबी चन्दन-वाड़ी करती मीठी बात जहाँ
झरनों का संगीत वहाँ
मलाहों का गीत वहाँ
जंगल-जंगल होड़ लगी है तितली और टिटहरी में
चलो चलें फूलों की घाटी में
नाबों की नगरी में।

इसके अतिरिक्त कई और हिन्दी कवियों ने अपनी कविताओं में कश्मीर -सुषमा पर सरस. सजीव और सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। हिन्दी कवियों के लिए कश्मीर हर प्रकार से प्रेरणादायक रहा है और यही कारण है कि उनकी वाणी ने कश्मीर के बहुमुखी सौन्दर्य का वर्णन किया है।

भारत-पाक युद्धों के समय लिखी कविताएँ।

१९४७ के देश विभाजन के बाद पाक-दस्युओं ने कश्मीर को हथियाने का जो दु:साहस किया उसका यथोचित जवाब भारतीय सैनिक ने रणभूमि में दिया। हिन्दी कवि ने भी हुँकार की और देश-भक्त के कर्त्तव्य को निभाया। उसने अपनी कविता से अन्य देशवासियों पर यह बात स्पष्ट कर दी कि कश्मीर हम सब की आन है। और इसकी रक्षा के हेतु हम सब ने मिलकर काम करना है। कश्मीर-रक्षा इसलिए भी करनी आवश्यक हैं क्योंकि यह हमारी सनातन संस्कृति का एक अमर प्रतीक है।

कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह के शब्दों में :--

"भारत के वाङ्मय-वैभव का उद्गम समृद्ध,
भामह, वामन. उद्भट, कुंतक, रुद्रट प्रसिद्ध
आनंदवर्धन, अभिनव. वाणी के शीर्ष सिद्ध
मम्मट, मंखक की जन्म-भूमि यह ज्ञान वृद्ध।
जय अमरनाथ! जय कश्मीर !

सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय ने शत्रु को ज़ोरदार शब्दों में ललकारा है—"सारा कश्मीर हमारा है।"

"वह घाटी वह पर्वत श्रेणी
वह जो सरिता की धारा है।
सौन्दर्य जहाँ तक फैला है
सारा कश्मीर हमारा है ॥

इतिहास हमारा साक्षी है
भूगोल प्रमाण हमारा है।
हमने न स्वार्थ हित कभी
युद्धों में औरों को ललकारा है।

पर जो हमको ललकारेगा
उसका जवाब हम देंगे ही।
जो क्रुद्ध युद्ध में उतरेगा
उससे हम टकरायेंगे ही ॥

विश्व राजनीतिज्ञ कई योजनाएं बनाकर कश्मीर को पाकिस्तान के हाथ सौंपना चाहते थे। इस साम्राजी चाल को समझकर सुप्रसिद्ध हिन्दी कवयित्री कमला चौधरी ने इस प्रकार लिखा—

भीख में कश्मीर देदूँ ?

"क्या कहा कश्मीर देदूँ हिन्द की जागीर दे दूँ।
यह कभी मुमकिन न होगा मुक्ति की तक़दीर दे दूँ।
क्या हिमानी कूल दे दूँ, ज़ाफरानी फूल दे दूँ ?
गंध केसर की नशीली, बूटियां अकसीर दे दूँ ?

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

पर्वतों का ताज दे दूँ हिन्द का यह नाज़ दे दूँ
अब गवारा है नहीं डलझील का भी नीर दे दूँ

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

यह चमन कुर्बानियों का शान का इतिहास है,
नौ निहालों के लहू से क्या लिखी तहरीर दे दूँ ?

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

भीम अर्जुन से हज़ारों वीर रक्षा को खड़े
ओ दुशासन ! हाथ में क्यों द्रोपदी का चीर दे दूँ ?

कश्मीर के कई महाज़ों पर भारतीय जवानों ने जो अद्भुत और अद्वितीय साहस का प्रदर्शन किया उसका वर्णन हिन्दी कवियों ने स्वर्णाक्षरों से किया। सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि शिवसिंह सरोज ने 'रक्त-रंजित कश्मीर' नामक काव्यपुस्तक में दुर्गम-द्रास-विजय का मर्मस्पर्शी वर्णन इस प्रकार किया है—

जय हिम-नग के मग पर जग-मग, पावक-पग धरने वालो।
ज़ोजीला का त्रास दूर कर द्रास विजय करने वालो।
हिम पथ का वह प्रबल प्राण पर पड़ पाने वाला पाला,
अर्जुन. भीम, युधिष्ठिर, तक को जिसने जकड़ गला ड़ाला
प्रतिपल कंपित, उत्पल-झंपित जगवंदित पर्वतमाला—
जिन वीरों के लिए बन गई अशनिपुरी आश्रयशाला।
जिनके अनल उगलते पौरुष पर विस्मित इतिहास खड़ा.
जय हो उनके ज्योतित पदतल प्रतनु प्रभा भरने वालो।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

जिनके गर्म रुधिर पर नगपति का हुलसित हिमास धरा.
केसर प्रान्तर के जन्मान्तर का ज्योतित इतिहास धरा.
अरितीरों से जिनवीरों की ताक़त का तूनीर भरा,
उन्हीं जवानों के कौशल के करतल पर कश्मीर धरा।
हिन्द वाहिनी के योद्धा जय सहचर अमर हिमलाय के,
युग की ज्योति जिलाने वालो और स्वतः मरने वालो !

शिवसिंह सरोज की एक और प्रसिद्ध कविता है 'ब्रिगेडियर उस्मान' ब्रिगेडियर उस्मान का नाम भारत-पाक युद्ध के अमर सेनानियों में सर्वोपरि है—

केसर की क्यारी की स्वतंत्रता का निखार
कल्याण-कौमुदी का प्रति पलकों में प्रसार.
उस्मान तुम्हारे बल पर ही था अवलम्बित;
सन्तुष्ट सुहृद थे. और शत्रुदल आतंकित।

जब क्लीव कबीली-दल कश्मीरी केसर में—
चुपके से रख करके चिनगारी हर घर में—
बस लूक लगाने को उद्यत हो जाता था,
बन वेग वारि का कौन उसे धो जाता था?

वह तुम थे सेनप, जिसका दामन पकड़ प्यार
चलता था पशुओं के आगे सीना उभार।
'भैया-उस्मान' अमर उन बहनों के दुलार,
जिनको लाये थे तुम उस आफत से उभार।

इस प्रकार के आधुनिक भीष्म के अद्वितीय पराक्रम का ओजस्विनी भाषा में चरित्र-चित्रण करते हुए कवि अन्त में इस प्रकार श्रद्धांजलि अर्पित करता है—

कश्मीर हिन्द का हृदय-मिलन कवि-गान अमर;
माँ के पय का सम्मान अमर, उसमान अमर।

कश्मीर की उपमा स्वर्ग से दी जाती है और पुराणों में वर्णन मिलता है कि स्वर्ग को हथियाने के लिये देवासुरसंग्राम हुआ था। आज भी कश्मीर को लक्ष्य बनाकर असुर (साम्राज्यवादी) इसे हथियाने के लिए अग्रसर है। इस भाव को राजस्थान के कवि परमेश्वर द्विरेफ ने "देवधाम कश्मीर" नामक कविता में वर्णन किया है।

देवधाम के लिए सुना है, देवासुर संग्राम हुआ था
और आज भी वह आक्रमण, देवधाम पर असुर गणों का
खींच रहा उनको आकर्षण कुँकुम, द्राक्षा, सोम वनों का।
वे लुब्धक की भाँति आज मधु के छाते पर मण्डराते हैं।
स्वर्ग हमारा, हम हैं स्वामी यों गाते हैं अकुलातें हैं
किन्तु इन्द्र का वज्र भयंकर जब चीरेगा इनके तनको
हाहाकार करेंगे दानव' प्राण लिये भागेंगे बन को।

१९६ में पाकिस्तान ने पुनः कश्मीर को बज़ोरे शमशीर हथियाने

की चेष्टा की। यह सौदा भी उसे पूर्ववत् महंगा हीन पड़ा। 'तन्मय-बुखारिया' ने इस समय 'हमारा-कश्मीर" नाम से एक कविता लिखी—

हसीन फूलों का कलियों का चमन है कश्मीर,
किन्रों हूरों का परियों का वतन है कश्मीर,
मगर किसी ने जो चाहा कि इसे डंस ले तो,
आग का ढेर है, इक काला कफ़न है कश्मीर।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

होश में आओ ज़रा होश को खोने वालो,
ज़िक्रे कश्मीर पै 'जहाद' को रोने वालो;
अपने ही नाश को दावत न दो मिट जाओगे,
डालरों, एटमों की सेज पै सोने वालो।

कश्मीर भारत का सम्मान है। यह कैसे सम्भव है कि कश्मीर भारत से अलग हो। राम प्रसाद मिश्र के शब्दों में—

यहीं गिरा था कण्ठ सती का यह माँ का सीमन्त।
जिसकी कृपालुता लतिका का यहाँ प्रसार अनन्त॥
भारत के कण-कण में इसके प्रति-निष्ठा का मान।
"है कश्मीर हमारा" यह व्रत भारत का सम्मान॥

इस प्रकार राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अनेक कवितायें कश्मीर के विषय में लिखी गई हैं राबिन शॉ पुष्प, शैवाल सत्यार्थी, चंद्रगुप्त मयंक, घनश्याम अस्थाना, जगदीश चन्द्र शर्मा, चंद्र पाल सिंह यादव आदि कवियों ने भी उपर्युक्त विषय पर सुन्दर भाव-पूर्ण कवितायें लिखीं हैं।

विविध।

कश्मीर के विविध पहलुओं को उजागर करते हुए रामनरेश त्रिपाठी, बेढब बनारसी, प्रभाकर माचवे; जगदीश गुप्त और प्रकाश दीक्षित ने रोचक कवितायें लिखीं हैं। 'कश्मीर-सुषमा' शीर्षक से बेढब जी क

व्यंग्यात्मक पंक्तियाँ देखिये—

"जिस तरह सब व्यंजनों में खीर है,
जिस तरह दीवार पर शहतीर है।
ठीक वैसे ही हमारे देश में,
स्वादमय औ, उच्चतम कश्मीर है।।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖ ❖

पत्तियाँ यह हैं चिनारों की नहीं,
खेलती सुषमा बहारों की कहीं।
पास आओ, हाथ का संकेत है,
है जगह दिल में विचारों की नहीं,

प्रभाकर माचवे कश्मीरी साहित्यकारों से बड़े प्रभावित हुए हैं। उनकी कश्मीरी साहित्य में गहन रुचि है—"हमारा सब का काश्मीर" शीर्षक से उन्होंने एक सॉनेट लिखा है। इसमें यहाँ के प्रसिद्ध साहित्यकारों को स्मरण करते हुए कवि ने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। यहां के कला-कौशल और प्राकृतिक सौन्दर्य को सराहा है। अन्त में शत्रुओं को ललकारते हुए कहा है—

'हो नहीं सकता किसी गैर का, सिर्फ एक का ऐ धीर-वीर।
हिन्दु - मुसलमान - सिख हमारा सब का कश्मीर।

जगदीश गुप्त का एक कविता संग्रह 'हिम-विद्ध' नाम से लगभग पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ हैं। उस में 'चन्दनवाड़ी' के आसपास "नदी के आवेग" को देखकर कवि की वाणी से यह पंक्तियाँ फूट पड़ीं हैं :—

"पर्वतों के बीच बहती,
नदी का आवेग

जैसे—

अश्रु बनकर बिखरने से पूर्व
हड्डियों को ठकठकाता हुआ कोई दर्द
रिक्त मन की घाटियों को चीर जाये।

राबिन शॉ पुष्प की एक सुन्दर कविता है– "माँग में सिंदूर सा......" इस में कश्मीर के दो 'चेहरे' प्रस्तुत किये गये हैं जो अन्योन्याश्रित हैं। इनको जुदा नहीं किया जा सकता।

"..... ...मैं राँझा हूँ——
मुझ से कोई नहीं छीन सकता,
कोई नहीं,
मेरी अपनी धरती, मेरी हीर... ...
हीर के जूड़े में गुँथा कश्मीर।

"..... ..मैं हीर हूँ——
मुझ से कोई नहीं छीन सकता,
कोई नहीं,
मेरा अपना राँझा,
मेरी अपनी तक़दीर .. ..
मेरी माँग में सिन्दूर सा सजा कश्मीर।

स्थानीय कवियों की कश्मीर सम्बन्धी कविताएं

जम्मू-कश्मीर के हिन्दी कवियों ने भी समय-समय पर विविध विषयों को लेकर कश्मीर सम्बन्धी कवितायें लिखी हैं। सत्यवती मल्लिक (हब्बाखातून की जीवन संध्या) दुर्गा प्रसाद काचुर (पंकज) पुरुषार्थवती (निर्झर) पृथ्वीनाथ पुष्प (बर्फ की सुषमा आदि) जानकी नाथ कौल 'कमल' (कश्मीर में बसन्त का आगमन आदि) डॉ रमेश कुमार शर्मा (अहरबल का पत्थर आदि) गंगादत्त विनोद (कश्मीर के बादल) डॉ अयूब प्रेमी

(पहलगाँव की एक शाम और नगीन पर शिकारा) मनसाराम शर्मा चंचल (कश्मीर सुषमा) पृथ्वीनाथ मधुप (कश्यपमर) आदि रतनलाल शान्त (चिनार) शशिशेखर (झील का जल) रामदत्त शर्मा (शहर वितस्ता का शहर) आदि की कवितायें उल्लेखनीय हैं।

सत्यवती मल्लिक ने प्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री हब्बाखातून के प्रति एक मर्मस्पर्शी कविता लिखी है जो हब्बाखातून दिवस समारोह पर कवयित्री ने पढ़ी थी। कश्मीर का नूरजहाँ कहलाये जाने वाली मलिका हब्बाखातून के अन्तिम दिनों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कवयित्री लिखती है—

.... ..'अरे यह ऊँची-ऊँची रूखी-रूखी चट्टानों पर
लेटी है सुकुमारी, वैरागिन सी कौन ?
न तन पर वस्त्र, न मुख पर हास,
उलझी हुई केश राशि,
हाय यह सुन्दर नाजुक देह ।
कैसे लोट रही धूल में
किन्तु अधखली कमल की फंखुड़ियों सी दो आँखें
टक टकी बाँधे
मानो रही हो खींच
तस्वीर गत जीवन की
और लबों से निकल रहा है
हा! प्यारे वतन, हा ! कश्मीर !

डॉ० रमेश कुमार शर्मा ने 'अहरबल का पत्थर' एक स्वालीलकी (एकालाप) के रूप में प्रस्तुत की है। अहरबल में आयोजित पिकनिक के अवसर पर कवि को एक विशाल गर्त्त के होठों पर रखा हुआ एक पत्थर दिखाई दिया। कवि के मन में विचार आता है कि लोगों ने उसे धक्का देकर पुनः खाई में गिरा दिया और उसके ढुलकने टकराने तथा अन्त में नीचे बहुत नीचे सरिता में गिरने का मजा लूटा।

अहरबल के इस पत्थर का शब्दचित्र कवि ने इस प्रकार खींचा है——

युगों का मंद मन्थन
अजस्र जलधारा की धड़कन
सुनता, सहता; सभीत, मौन—
मैं पड़ा रहा सदियों तक पड़ा रहा।

गोरे सलज्ज, सैलानी,
मृदु-मंथर चरणों की—
मिलन रोमाँचित चाप,
सहता, सुनता, सप्रेम, मौन—
मैं पड़ा रहा युगों तक पड़ा रहा।

डा० अयूब प्रेमी ने 'नगीन पर शिकारा' में भाव-विभोर होकर निम्न-लिखित पंक्तियाँ कह डाली हैं—

"... ...उठ रहे हैं झील पर झाग के मृदुल फूल
श्वेत-श्वेत लहरियों से महकता हुआ दुकूल।
गा रहा पवन शान्त धारा के सितार पर,
बिल्कुल वैसा गीत प्यार ने जो गाया था।
ओह ! यह चेतना भटकती-सी जा रही—
नीलम नगीन-सी बनजारी आँखों में .....।"

पृथ्वीनाथ 'मधुप' ने 'कश्यपमर' नामक कविता में कश्मीर की साँस्कृतिक पृष्ठ भूमि का वर्णन करने के साथ कश्मीर सुषमा का भी मनोहर वर्णन किया है—

"यह कश्यप की पावन धरती
जगदम्बा वरदान है।
यही धारा है जहाँ गूँजती—
वाणी-वीणा-तान है।

काव्य, कमल, केसर सुषमा की
यही मनोहर खान है।
यहीं प्रकटते जनहित को श्री अमरनाथ भगवान् हैं।

शशिशेखर की "झील के जल" कविता की यह पंक्तियाँ कवि की मौलिक अनुभूति का उत्कृष्ट उदाहरण हैं :—

झील के जल में
काँपती हैं बेद की पत्तियाँ
दर्पणों के जाल में
तड़प उठता है बसन्त।

"चिनार' कविता रतन लाल शान्त की एक नई कविता है। चिनार की शीतल छाया से प्रभावित कवि की वाणी कह उठी—

"छाँह चिनार की
तन के घायल, सिकुडे मन को
समय-समय की टीस दर्द से
(कुछ दुःख वाणी बूझ न पाई
कुछ मस्तिष्क नहीं कह पाया)
राह मिली
राहत पाई
पाई बाँह बहार की
छाँह चिनार की।

कश्मीर के समसामयिक आधुनिक हिन्दी-कवि

—डॉ० निज़ाम उद्दीन

द्वितीय महायुद्धोत्तर काल ने देश और समाज के धरातल को डगमगा दिया, मनुष्य पिटीपिटाई लीक का परित्याग कर नवीन मार्ग का अन्वेषण करने लगा। समाज की पुरातन आस्थाएँ, जीर्ण परम्पराएँ नष्ट होती गईं और नूतन मूल्य अंकुरित होने लगे। विषय परिस्थितियों के झंझावात में फंसा मानव मानसिक उलझनों एवं प्रतिक्रियाओं के भंवर में चक्कर काटता रहा : मंहगाई, बेकारी. आर्थिक विषमता, दरिद्रता, प्राचीन त्रयी रूढियाँ, बौद्धिकता, अहंकारिता, नास्तिकता सभी ने मानव-हृदय को आघात पहुंचाया । परिणामतः इसकी प्रतिक्रियायें नई अभिव्यंजना का परिधान धारण कर व्यक्त हुईं, नई प्रवृत्तियाँ, विश्वास, मूल्यों, शिल्प-विधियों का उद्रेक हुआ। जीवन के इस विश्वास का ईमनादारी के साथ अनुभव आधुनिक बुद्धिजीवियों, कवियों, कलाकारों ने ही किया। ऐसे आक्रान्त-विक्रान्त समाज की धड़कनों का चित्रण आज की कविता में विद्यमान है। जहाँ देश में अज्ञेय, धर्मवीरभारती, मुक्तिबोध. लक्ष्मीकांत वर्मा, नेमिचन्द्र जैन. नामवरसिंह, गिरजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा नरेश मेहता, कुँवरनारायण, शम्भूनाथ सिंह आदि आधुनिक कवि नए भाव बोध, नए सौन्दर्य बोध और नए मानव-मूल्यों नई अवस्था और यथार्थाग्रह लिए नई कविता की श्रीवृद्धि कर रहे हैं वहां कश्मीर के समसामयिक हिन्दी-कवि भी देश की संवेदना और नई परिस्थितियों का अनुभव करते हुए वैसी ही नई कविता की श्रीवृद्धि करने में प्रवृत्त हैं। उनमें भी एक नया सौंदर्य-बोध है, नई अभिव्यंजना-शक्ति है, नए मूल्य हैं।

शशिशेखर तोषखानी कश्मीर के प्रख्यात हिन्दी-कवि हैं। उनका काव्य नवीन युग-चेतना, यांत्रिक सभ्यता और वैयक्तिकता के परिवेश से संयुक्त

है। कवि की अहंवादिता अति तक पहुंच गई है, उनके जीवन की सारी निराशा, कुण्ठा, विफलता, वेदना कविता द्वारा निर्गत हुई है। 'थोड़ासा आकाश नामक कविता-संग्रह में ऐसी ही कवितायें हैं। इस संग्रह के 'आत्मकथ्य' में कवि ने स्वीकार किया है कि वह अज्ञेय से अत्यधिक प्रभावित हुआ है, और यह सत्यावलम्बित है, उनमें जो अहंवादिता है वह सामाजिक दायित्वों के कारण भले ही है परन्तु ऐसी ही अहंवादिता जैसी अज्ञेय में द्रष्टव्य है। शशिशेखर की कविता उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है, जो कुछ भी उन्होंने लिखा वह अन्तः प्रेरणा के द्वारा ही लिखा अतः उसमें कवि जीवन की सारी कुण्ठा, विघटन, अराजकता, आक्रोश, नैराश्य, विफलता झुँझलाहट विद्यमान है। परन्तु वह एकदम अन्तर्गुहासी भी नहीं, वह विघटित जीवन का ही तो बिम्ब है। उसमें जीवन के संघर्षों से जूझने की अदम्य शक्ति है उससे पराजित होने वाली निर्बलता नहीं। वह विवशता को चुनौती दे सकता है उसका शल्य उसका श्रमकर हार मानने वाला नहीं!

कविवर की धारणा है कि आधुनिक सभ्यता ने मानव-जीवन को पंगु बना दिया है। इस मशीनी युग ने मनुष्य को मनुष्य से वञ्चित कर मशीन और वासनाओं का क्रीतदास बना दिया है। कवि की इच्छा होती है कि इस सारी व्यवस्था को एक ही झटके में तोड़ दे जो मुमूर्ष आदर्शों के नाम पर व्यक्ति के स्वातंत्र्य का हरण करके, उसका विवेक छीन कर उसे एक चौखटे में बन्द कर देना चाहती है। कवि ऊबाई लाने वाली सभ्यता से समझौता करने को तैयार नहीं—

बाजारों में
उबकाई लाने वाले मलबे को
फूलों से ढक कर
सभ्यता के नाम पर बेचा जा रहा है
बाहर—
हवा को शायद जंग लग गई है

आसमान ने खुदकशी कर ली है,
और उसके घाव से
रक्त नहीं
आशंकाएँ टपक रही हैं।

आशंकाए, असफलतायें कवि को भीतर कचोटती रहती हैं इसलिए मुस्कान से अधिक उसे अश्रु प्रिय हैं। संघर्षों से टक्कर लेते, उनसे जूझते रहने की कवि में शक्ति तो दीखती है कि वह संघर्षों को पराभूत कर सफलता के मोती ग्रहण कर सकेगा लेकिन जान पड़ता है कि वह आक्टोपस की टांगों में जकड़ा गया है। जीवन में हर्षोल्लास के क्षण भी हैं और साथ में वेदनावृत्त, शापग्रस्त घड़ियाँ भी हैं— जैसे सागर में मोती भी हैं और आक्टोपस की टांगें भी हैं—

और अब तुम्हारा सत्य
आबदार मोतियों की तरलायित छाया में नहीं
आठ-आठ टाँगों की दयाहीन जकड़ में चरमरा रहा है।
और तुम्हारे संघर्ष का साक्षी
एक अथाह तरल अंधेरा है।

शशिशेखर की कविता में बिम्बयोजना भी आकर्षक है। 'बीमार चाँद' दमित आशाओं का प्रतीक है, 'ठूँठ' कुण्ठित इच्छाएँ हैं और 'हरियाली' आशा का रूप है। 'विशाल पंखुड़ियों वाला फूल' में दृश्य-बिम्ब बड़ा सटीक और आकर्षक है—

बिफरे जानवरों-सी
बेतहाशा भाग रही बसों
और कोलतार की सड़कों पर हाँफ रहे
समय के बीच
एक फूल अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है।
कहीं-कहीं अनूठे उपमान भी हैं—

स्तब्ध वृक्षों के पीछे सूरज
एक चिमगादड़-सा लटक रहा है।

चिमगादड़, सूरज आदि उपमान कवि को अत्यधिक प्रिय हैं। कुछ कविताएँ तो भाव और शिल्प की दृष्टि से अतीव चित्ताकर्षक है जैसे मोम के ये पंख औ' जाना सूरजमुखी के देश'।

रतनलाल 'शांत' की कविताओं में एक नयापन और सशक्तता है। वैसे जीवन इनके लिए भी घुटनापन्न वातावरण है जैसे शशिशेखर के लिए। दोनों को जैसे जीवन विवश होकर जीना पड़ रहा है। तथाकथित आशावादिता उनके लिए सहज उपलब्ध्य नहीं। कवि ने अपने 'खोटी किरण' नामक कविता-संग्रह में यह माना है कि उनमें छायावादी संस्कार ढूँढे जा सकते हैं। लेकिन जब कवि ने लिखना प्रारम्भ किया तब नयी कविता अपने वस्तु-रूप-विधान में स्थिर हो गई थी उसमें प्रौढ़ता आने लगी थी। कवि-आशय के अनुकूल उनपर प्रगतिवादी काव्यधारा का कोई प्रभाव नहीं, आवश्यक भी नहीं। लेकिन एक विशेष खटकने वाली बात यह है कि जो कवि अपने में छायावाद संस्कार उद्भासित करने की लालसा तो रखता है वही छाया-वादी की एक सर्वोत्कृष्ट विशिष्टताप्रकृति: चित्रण या प्रकृति-सौंदर्य-निरूपण से कन्नी काटता है — "कश्मीर के कवि से अनायास ही आशा की जाती है कि प्रकृति-सौंदर्य को प्रकट करे। औरों का तो कह नहीं सकता लेकिन मै इसे ऊब की हद तक जीते-जीते थका हूँ। आपसे भी चाहता हूँ कि इस सौन्दर्य को केवल पहाड़ों में न देखिए घाटी में उतर कर इसे लोगों की वृत्तियों में ढूँढिए तो जान जायेंगे कि यह अब केवल एक आवरण एक लबादा और मुखौटा रह चुका है।" वास्तव में प्रकृति और मानव का अविनाभाव-सम्बन्ध है, आदि काल से वह मनुष्य की दुःख-सुख-सहचरी रही हैं। जीवन में प्रकृति का एक निजी महत्त्व है- एक स्थान है। परन्तु अन्तर्गुहावासी या अति वैयक्तिक मानव के लिए प्रकृति सम्भव है उपेक्ष्य हो। अस्तु प्रकृति का उसके पदार्थों का संदर्शन फिर भी उनके काव्य में होता है। कहीं ये

प्राकृतिक पदार्थ चित्र रूप में हैं और कहीं प्रतीकार्थ। 'वसंत गीत' कविता की ये पंक्तियां देखिए—

दो श्वेत पंख हवाओं में उड़े
इनकी हरी छाया तले
करारे सूखे पत्ते भी उड़ते रहे
पुत्रवती डालों ने गर्व किया
दूसरा जन्म कितनी जल्दी पाया।

पतझड़ के पश्चात् बसंत में नवांकुरों के फूटने का अच्छा दृश्य है।

जान पड़ता है कवि शांत भी अन्य नए कवियों की भाँति जीवन के वैषम्य से क्षुब्ध ईश्वर के प्रति अनास्थावान हो गया है। परन्तु वह जगत् से, जीव से ईश्वर की कोई पृथक सत्ता मानने को तैयार नहीं वह आत्मा के नेगेटिव का ही तो एनलार्ज किया वृहत् रूप है और परमात्मा आत्मा के बिना एक लंगडा दुमकट उपसर्ग मात्र है—

मेरे बिना तुम 'परम' केवल
एक लंगडे दुमकटे उपसर्ग हो।

नई कविता में चाहे कितना ही नैराश्य हो, जीवन के प्रति कितना दमघुटा स्वभाव हो फिर भी आशाएँ अपने शीतल एवं स्नेहिल अँचल से मनुष्य को दुलारती प्रतीत होती हैं। 'एक आशावादी का वक्तव्य' कविता में शान्त जी ने भी विवशता के पिंजरे में आबद्ध, निराशा की सिसकियों भरे जीवन को आशान्वित किया है उसके सामने जीवन-गीत गाया है—

जियो
शायद कल सुबह अचानक
लोगों में संवेदना हो जागृत
खतम हुई हो बेईमानी

कवि के उपमान कहीं-कहीं आकर्षक हैं, उनमें एक नवीनता और ताज़गी परिलक्षित होती है जो नई कविता की एक देन है—

नीलम की एक गोल तश्तरी से कपोल को
चूमने का जिया करता है ।

डॉ अयूब 'प्रेमी' भी इसी नयी कविता की एक सशक्त शृङ्खला हैं। उनके काव्य में एक नयी और मार्मिक सूझबूझ है, नया दृष्टिकोण है। हाँ अन्य कवियों की भाँति न जीवन के प्रति कोई ऊब है और न कुण्ठाएँ उनके आस्थावान जीवन को घुन की तरह भीतर ही भीतर कचोटती हैं। उनके अभी अभी दो कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं 'दर्पण बन गया इतिहास' तथा 'यह आस्था यह अंधेरा' । प्रेमी जी की कविताओं का अवलोकन करने के उपरान्त यह धारणा बनती है और दृढ़ होती है कि उन में परम्परा के प्रति बैर नहीं, यहाँ कवि परम्पराओं के सोपानोंपर पगधर कर ही यहाँ तक आपहुंचा है। अतः यह एक प्रशंस्य एवं उल्लेखनीय बात है। पुराने के प्रति लगाव, नए के प्रतिआस्था बनी हुई है । यही कारण है कि उन में प्यार की भावना भी है और जीवन की विभीषिका-सम-विषम अनुभूतियों की प्रचण्डता भी। जो जीर्ण रूढ़ियाँ हैं, जिनसे मानव जीवन खोखला होता जारहा है उनका मुखौटा धारण करने की कवि में लेशमात्र भी इच्छा नहीं। यहाँ व्यष्टि और समष्टि का एकीकरण है जो मनुष्य है वही समाज है दोनो का काक-तालीय सम्बन्ध है। प्राचीनता और नवीनता का खण्डहर यही समाज है. मनुष्य है 'खण्डहर' कविता में यह अनुभूति कितनी सजीव है—

मृतक पिशाच समान
शून्य स्तब्धता —
मेरे कमरे की दीवारों से
रोज़ डराती,
+ + +

कुछ वीभत्स विचार
उभरते आते हैं
जैसे उठते आते
किसी कब्र में से दाँत निकाले
श्वेत कफ़न में प्रेत यहाँ।

× × × ×

और अंधेरा बढ़ते ही
कुछ छायायें
रोज़ विचरतीं रहतीं
इसी खण्डहर में।

'प्रेमी' में जीवन के प्रति अटूट और अडिग विश्वास है। चाहे पग थकित होजायें, चाहे पथ का कोई अन्त भी न मिले, चाहे मरुथल मिलें या मधुमास, प्यार मिले या घृणा, परन्तु वह साधनारत रहेगा और जीवन के तल-छट का पान करके ही दम लेगा। उन में जीवन के अत्याचारों दमन-चक्रों से समझौता करने की तनिक भी लालसा नहीं। वह इतर लोगों की भाँति चढ़ते सूरज की पूजा करने वाला नहीं, वरन् सामाजिक विषमता और विभीषिका के प्रति बगावत करने वाला है। अतः उनके काव्य में व्यंग्योक्तियाँ अधिक पैनी और चुभने वाली हैं, वे तीक्ष्ण और प्रखर हैं। यहाँ अभिधा से अधिक कवि ने व्यंजना और लक्षणा से काम लिया है। 'गुनगुना युग और उफनाता दर्द' 'मेरी तुम्हारी यात्रा,' 'सिद्धान्त के देवता को' 'काले सूरज की मौत' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। आज बड़े २ आदमी स्वार्थ की रुपहली रजताभ से चकाचौंध हो कर्तव्य का ध्यान खो बैठते हैं, नियम और सिद्धांतों की गर्दन मरोड़ देते हैं, कितने षड़यंत्रों और कुचक्रों की रचना कर स्वार्थसिद्धि में तत्पर रहते हैं। सिद्धान्तों की ओट लेकर दानवी कुकृत्य किये जाते रहे, मानव की

अपेक्षा दानव की— दानवी वृत्ति की पूजा की जाती रही—

सत्य का नाम

धूर्तता

उससे बचकर

रहना भी तो और कठिन है।

× × × × ×

सिद्धांतों ने

गला घोंट कर

हत्या कर डाली

मानव की

सिद्धांतों की ओट

यहाँ पर

पूजा हुई सदा

दानव की।

वही तो आज का खोखला, कृत्रिम आदर्श है कवि की दृष्टि में कुछ पुरानी परिभाषाएँ फीकी और विरस हैं, उनमें नयी भावभंगिमा भरी गई है आज प्रेम का रूप ही अनूठा है—

प्रेम दुबारा लिखा हुआ सा,
कागज का तह किया पुलिंदा
हर तह क़ब्र बनी गीतों की
गीतों में बेचैन परिन्दा।

कवि की ईश्वर-पूजा सच्ची मानव-पूजा है— उसका समादर है— उसके प्रति संवेदना और सहानुभूति रखना है। वह प्रगतिशील है, उसे शूलों की चिन्ता नहीं, चिन्ता है—

भूखे पेट रंभाती गायों की
दम तोड़े कंकाल वत्स के लिए
विवश क्रुद्ध चीख पुकारें
आती दिल दहलाने वाली
दुखियों की निःश्वासें आहें

'परिणीता के प्रति' कविता में अनुभूति की शुभ्रता, बिम्बात्मकता बड़ी आह्लाद कारिणी हैं. प्रणय की कैसी शंकाकुल झलक है—

पृष्ठों बीच दबी तितली के
पंख देख हर बार चौंकती
जिनके चमकीले कण
चेतना की तह में भर जाते।

प्रेमी जी की कविता में जीवन के विभिन्न पक्षों का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। प्रकृति की सुषमा से भी वह रसाप्यायित होता है, जीवन की कटुता भी उसे प्रिय है। और कहीं कहीं देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सिंह-गर्जना भी है। यहाँ शत्रु के लिए बर्फ, झील, पर्वत सभी में अग्नि-पुंज भरा है। इस शरीर की, जीवन की, यहाँ कब किसने चिन्ता की है। 'तुम्हारी गर्म-गर्म साँसें' पाक-भारत युद्ध के समय लिखी कविता है उसमें कवि ने शत्रु को ललकारा है—

खबरदार! मेरे पहाड़ में आग
आत्मा में भी आग और झील में आग है
जो तुम्हारी साँसों की लपटों को
कहीं निगल न जाय।

इसी प्रकार 'यह आस्था यह अंधेरा' में 'उद्बोधन' कविता है जहाँ कर्मशीलता का शंखनाद श्रवणगोचर होता है—

उत्पादन-अभियान
करो श्रमदान

उठो मेरे जवान!
मेरे किसान

कवि का प्रकृति-अनुराग 'पहलगांव की शाम' लिद्दर का अंचल' और 'नगीन पर शिकारा' 'यह नहीं रहेगा' आदि कविताओं में दृष्टव्य है। यहाँ प्रकृति के लघु-खण्ड-चित्रों की अभिराम सृष्टि हुई है। यहाँ कवि के लिए प्रकृति एक प्रेरणा है' छलना-करुणा आवेष्टित पंचरंग चोल भी। यहाँ नवीन बिम्ब-योजना सुन्दर है—

एक बूंद उछली सहसा
घाटी के अनुपम मधुवन में
मन में और उन्मुक्त गगन में।
भ्रमर-दूत सा सूर्य
प्यार के व्रज से लौटा—
चन्द्रमुखी के अलक जाल सी
गहराती बदली से झाँका

पृथ्वीनाथ 'मधुप' और मोहन निराश यहाँ के अच्छे गीतकार हैं। इनके गीतों से शृङ्गार की पावन छटा विकीर्ण होती है। मधुप जी ने गीत, गज़ल. मुक्तक आदि अच्छे लिखे हैं अब तो नयी कविता की ओर भी दृढ़ता से क़दम अग्रसर हो रहे हैं। अभावों का आसव इन्हें भी पान करना पड़ रहा है। अतः सामाजिक वैषम्य पूर्ण यथार्थता को देखकर कविता में व्यंग्यात्मकता भी प्रखर होती गई है। कैसी चुभती और सच्ची बात कवि ने कही हैं—

ज्ञान नहीं लाठी की भक्ति यहाँ होती है
सदा सिफारिश मुस्काती मति कलप-कलप रोती है
यही ज्योति की किरण दिखती थी उनको भाई।
बेकारी का बोझ शारदा गलियों में ढोती है।

इसी सामाजिक वैषम्य की धधकती चिता से भयाकुल हो कवि

ईश्वर की सत्ता में संदेह करने लगा है एक कहानी' में ईश्वर से ऐसा ही शिकवा है। नई सभ्यता— नग्न सभ्यता जिसकी जड़ें एकदम निःशक्त हैं— खोखली सभ्यता है जो उसकी 'एक नारी' का रूप देखिए। यहाँ हमारी शुचितान्वित संस्कृति पर कैसा तमाचा मारा है—

आधी निरावरण
आधी सावरण
नग्ना।
यही तुम हो?
[और कुछ नहीं?
सीता, सावित्री... ... ...सुता
ओ]

मधुर जी की 'मैं' 'नव वर्ष' और 'बधाई' बड़ी सुन्दर रचना है उसमें जीवन का घोर यथार्थ चाँदी के कवर में लिपटा है, आकर्षक है साथ में घिसे, खाली बर्तन, अनुचाई बिलें और न जाने क्या-क्या, और फिर नया जन्मदिन, आयु का एक वर्ष कम। मोहन निराश के गीत कर्णप्रिय होते है, वह कश्मीर के चाहते गीतकार हैं। निराश जी का मुख्य क्षेत्र गीति-काव्य ही है परन्तु कभी-कभी वह नयी कविता की लीक पर चलने का प्रयत्न भी करते हैं जहाँ कभी-कभी उनके पग डगमगा जाते हैं, फिर भी अनुभूति उन का हाथ थामे रही है। मानव अपनी सीमा का अतिक्रमण कर न जाने कहाँ पहुँचना चाहता है, क्या उपलब्ध करने की आकांक्षा संजोए रहता है परन्तु वहाँ इतने ऊँचे उसके— बौने के हाथ वाँह जा सकते हैं।

'हम बौने' में निराश जी ने यही भाव व्यक्त किया है। यहाँ 'जराफ की शिखा' से न जाने कवि का क्या आशय है। खजूर की फुंगी के साथ जराफ की गर्दन तो ठीक बैठ सकती थी। यह अस्पष्टता उनकी अन्य कविताओं में भी दृष्टिगोचर होती है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य कवि भी कविता रचने में संलग्न

हैं। कुछ में तो सचमुच कविता करने की प्रतिभा है और कुछ बरबस—दूसरों को देखकर कविता करने का दम्भ भरने लगे हैं। डॉ० रमेशकुमार शर्मा रामदत्त आदि भी कविता-क्षेत्र में सफलता प्राप्त करते संलक्षित होते हैं। रमेश जी की कविता में खरी और दिल को छूती व्यंग्योक्तियों का बाहुल्य है। प्रेमी जी की तरह संघर्षमय जीवन के कटु अनुभव इनकी कविताओं में दृष्टव्य हैं।

कश्मीर के हिन्दी कवियों की कविता आधुनिक जन-जीवन के सन्निकट है उसमें एक शक्ति और प्रेरणा है। यहाँ की सुरम्य और अभिराम घाटी में कविता-पक्षिणी यदि अपने परों को न फड़फड़ाए वह मदभरी उड़ान न भरे तो कविता का अस्तित्व ही न रहेगा। यहां के कवियों में (दो-एक को छोड़कर) भाषा पर अभी जैसे पूर्ण अधिकार नहीं, शब्दभण्डार से जैसे वे रिक्त हैं। शशिशेखर की भाषा में अधिक सशक्तता है। रतनलाल जी शांत ढोलों की अपेक्षा 'डोलों' लिखना शायद कश्मीरी उच्चारण की दृष्टि से उचित समझते हों परन्तु यहाँ उन्होंने यह शब्द मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया है यह खटकता है। 'चरिन्दों'-'परिन्दों' लिखने में प्रेमी जी ने चरन्दों और परन्दों का प्रयोग किया है। दोनों शब्द फारसी के हैं और चरन्दा नहीं 'चरिन्दा' लिखते हैं। अयूब प्रेमी के सद्यः प्रकाशित दो कविता-संग्रह बड़ी प्रौढ़ता के परिचायक हैं और उनसे नयी कविता में कुछ अभिवृद्धि होगी, ऐसा विश्वास है।

जम्मू–कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति एक परिचय।

जम्मू-कश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की स्थापना सन् 1956 ई० में हुई। यह संस्था जम्मू-कश्मीर राज्य में एकमात्र एक ऐसी संस्था है जो यहाँ राष्ट्र-भाषा के प्रचार-प्रसार के पावन कार्य में संलग्न है। प्रोफेसर जगद्धर जाडू, जो इस संस्था के अध्यक्ष हैं, के योग्य निर्देशन में यह संस्था उत्तरोत्तर प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रही है। अपने स्थापना-काल से लेकर आज तक इस संस्था ने राष्ट्र-भाषा प्रचार के निमित्त जो क़दम उठायें हैं उनका संक्षिप्त व्योरा इस प्रकार है :—

१. राष्ट्र-भाषा-प्रचार परीक्षाओं की व्यवस्था :

समिति राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा, संचालित राष्ट्र-भाषा प्रचार परीक्षाओं एवं राष्ट्र-भाषा उपाधि परीक्षाओं को चला रही है। राष्ट्र-भाषा की विभिन्न परीक्षाओं में अप्रैल 1970 तक कुल 22126 परीक्षार्थी सम्मिलित हुए हैं जिन में से 6250 मुसलमान हैं। विभिन्न परीक्षाओं की व्यवस्था करने के लिए एवं परीक्षार्थियों को निशुल्क पढ़ाने के लिए राज्य भर में इस समय (अप्रैल 1970) तक 48 केन्द्र स्थापित किए गये हैं। इन केन्द्रों का संचालन सुयोग्य केन्द्र व्यवस्थापकों एवं प्रचारकों के हाथों में है। समिति किसी भी परीक्षार्थी से परीक्षा-शुल्क अथवा पुस्तकों का मूल्य या किसी प्रकार का अन्य शुल्क नहीं लेती। यह सारा खर्च समिति स्वयं ही वहन करती है। समिति की 'कोविद' तथा 'राष्ट्र-भाषा रत्न' परीक्षाओं को जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय ने क्रमशः अपनी 'रत्न' तथा 'भूषण' परीक्षा के समकक्ष माना है।

उर्दू पढ़ी-लिखी जनता को राष्ट्र-भाषा सिखाने के लिए समिति ने

अब तक दो 'उर्दू-हिन्दी स्वयं शिक्षिकाएँ' प्रकाशित की हैं जिसकी हज़ारों प्रतियां निःशुल्क वितरित को गई हैं। ऐसी ही तीसरी पुस्तिका प्रेस में है जो निकट भविष्य में ही छप कर आएगी।

२. हिन्दी टंकन एवं आशुलिपि वर्ग :

समिति श्रीनगर में एक हिन्दी टंकन एवं आशुलिपि वर्ग भी चला रही है। इस वर्ग को चलाने के लिए एक सुयोग प्रशिक्षक की सेवाएँ समिति को प्राप्त हैं। प्रशिक्षण दो बैठकों—प्रातः सायं—में दिया जाता है। वर्ग में आठ हिन्दी टंकन यंत्र हैं।

३. राष्ट्र-भाषा पुस्तकालय एवं वचनालय :

समिति ने श्रीनगर, अनन्तनाग, लेह (लद्दाख) में राष्ट्र-भाषा पुस्तकालय स्थापित किये हैं। श्रीनगर के केन्द्रीय राष्ट्र-भाषा पुस्तकालय में लगभग 11,000 (मार्च 1969) पुस्तकें हैं। अनन्तनाग के राष्ट्र-भाषा पुस्तकालय में 1900 पुस्तकें तथा लेह के राष्ट्र-भाषा पुस्तकालय में 2400 से अधिक पुस्तकें हैं। जवाहरनगर (श्रीनगर) में एक 'बाल-पुस्तकालय' भी स्थापित किया गया है। इस पुस्तकालय में बाल-साहित्य की लग-भग 650 पुस्तकें हैं। इसके अतिरिक्त रोचक मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक हिन्दी पत्र पत्रिकाएं भी प्रत्येक पुस्तकालय में आतीं हैं।

४. वादविवाद, निबन्ध तथा अन्य प्रतियोगितायें :

हिन्दी प्रचार-प्रसार को गति देने एवं जनता में राष्ट्र-भाषा के प्रति-अभिरुचि जगाने के लिए समिति समय-समय पर विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करती आरही रही है। अब तक विभिन्न अवसरों पर, वाद-विवाद, निबन्ध, कविता तथा कहानी प्रतियोगिताओं का आयोजन डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ 'प्रेमी' की अध्यक्षता में हो चुका है जिसमें सैंकड़ों व्यक्तियों ने भाग लिया है। गतवर्ष, 9 दिसम्बर 1968 को, समिति ने श्रीनगर, अनन्तनाग, किश्तवाड़, बारामुल्ला, सोपोर

तथा पुन्छ में गाँधी-विषय निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता में लग-भग 237 प्रतियोगियों ने भाग लिया और सुयोग्य प्रतियोगियों में 70 रुपये के नक़द इनाम वितरित किये। कुल मिलाकर अभी तक उक्त प्रतियोगिताओं पर 15,055 रुपये से अधिक की राशि विभिन्न पुरस्कारों के रूप में दी जा चुकी है।

५. हिन्दी प्रशिक्षण शिविर :

समिति हिन्दी प्रचारकों एवं हिन्दी शिक्षकों के लिए समय समय पर हिन्दी प्रशिक्षण-शिविरों का आयोजन करती आई है। इन शिविरों में उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा हिन्दी-शिक्षण एवं प्रचार की समस्याओं पर भाषण दिलवायें जाते हैं। ऐसे ही एक शिविर का आयोजन जनवरी 1965 में किया गया था। यह शिविर पन्द्रह दिन तक रहा और प्रचारकों के यात्रा-व्यय, आवास आदि पर 4000 रुपये की राशि खर्च हुई।

६. कवि सम्मेलनों एवं कविगोष्ठियों का आयोजन :

पृथ्वीनाथ मधुप के संयोजकत्व में समिति समय-समय पर हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा कश्मीरी आदि भाषाओं के मिले जुले कवि सम्मेलनों एवं कवि-गोष्ठियों का आयोजत करती है। स्वतन्त्रता-दिवसे एवं गण-तन्त्र-दिवस के अवसरों पर ये सम्मेलन विशेष समारोह के साथ किये जाते हैं। इस वर्ष (सन् 1969 ई० में) समिति ने गाँधी जन्म-शताब्दी के सम्बन्ध में राज्य प्रमुख मण्डलों में गाँधी-विचार-धारा एवं गांधी जी की शिक्षाओं का प्रचार करने के निमित्त कवि-सम्मेलनों के आयोजन का निश्चय किया है। इस सिलसिले में सोपुर में एक भारी कवि सम्मेलन हो चुका है। अनन्तनाग आदि प्रमुख स्थानों पर निकट भविष्य में ही कवि सम्मेलनों का आयोजन हो रहा है।

७. साहित्य-संस्था का संगठन :

जम्मू-कश्मीर राज्य के हिन्दी साहित्यकारों को संगठित करने एवं

उनकी रचनाओं को प्रकाश में लाने तथा साहित्यिक बैठकों आदि का आयोजन करने के निमित्त समिति के तत्वावधान में एक साहित्य-संस्था की स्थापना 1965 ई० में की गई है। अब तक संस्था की अनेकों साहित्यिक बैठकें हुई हैं। संस्था की ओर से डॉ० अयूब 'प्रेमी' तथा पृथ्वीनाथ मधुर के कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। संस्था जम्मू-कश्मीर के कश्मीरी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत डोगरी आदि-भाषाओं के साहित्यकारों के चित्रों तथा उनकी संक्षिप्त जीवनी का संग्रह कर रही है। अब तक संस्था को लग-भग एक सौ चित्र एवं परिचय प्राप्त हो चुके हैं।

प्रस्तुत संग्रह "... ... ..." भी संस्था के प्रकाशन कार्य-क्रम के अधीन ही प्रकाशित हो रहा है। संस्था इस प्रकार के प्रकाशन समय-समय पर करती रहेगी। एक हिन्दी मासिक पत्रिका के प्रकाशान की योजना भी संस्था ने बनाई है आशा है शीघ्र ही इस पत्रिका का प्रकाशन भी सम्भव हो सकेगा।

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से प्राप्त अनुदान :

समिति अपने कार्य-क्रमों एवं अन्य योजनाओं को स्वायोजित धन संग्रह, दान में प्राप्त धनराशि इत्यादि से चलाती है। हाँ केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त अनुदान से भी समिति को अपने कार्यक्रमों एवं योजनाओं को कार्यान्वित करने में कुछ हायता मिली है। समिति को जो अनुदान आज तक मिला है वह इस प्रकार है :

वर्ष	केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राप्त राशि	वर्ष	राज्य सरकार द्वारा प्राप्त राशि
1965-66	24 750,00 मार्च 1967	1965-66	19,823.00 अक्तूबर '68
1966-67	23 625,00 मार्च 1967	1966-67	
1967-68	21,799.00	1967-68	
1968-69	22.516.00	1961-69	प्रतीक्षित

समिति-स्थाई सम्पति :

मार्च 1969 के अन्त तक समिति के पास निम्न स्थाई सम्पत्ति एकत्रित हुई है :—

1.	प्रचार-कार्य के लिए जीप माइक के साथ	21,465.07
2.	एकजेस्टनर डूपलिकेटिंग मशीन	3,464.01
3	अठारह टंकन यंत्र	13.588.34
4.	पुस्तकें (पुस्तकालियों में)	24,244 16
5.	फर्निचर इत्यादि	5,036.47
	योग	67,798 05